लोक संवाद

अक्टूबर 2019 नई दिल्ली

क्श्मीरः अनुच्छेद 370 की समाप्ति
एक राष्ट्र, एक निशान, एक संविधान
अनुच्छेद 370 के कानूनी मायने
मिलिट्री–इंडस्ट्रियल कॉम्पलेक्स के आलोक में
विशेष लेख
आर्थिक मंदी का साया
शिवपुरीः दलित बच्चों की हत्या
ईपीडब्लू का हिंदी प्रोजेक्ट
संपादकीय एक : किसकी भाषा
संपादकीय दो : कारपोरेट कर में कमी
प्रसंगवश
यूएनएचआरसी का बयान; डीयू के शिक्षक के यहां छापामारी; खुदरा तेल के कारोबार पर रिलायंस का कब्ज़ा; बुलेट ट्रेन प्रोजेक्ट

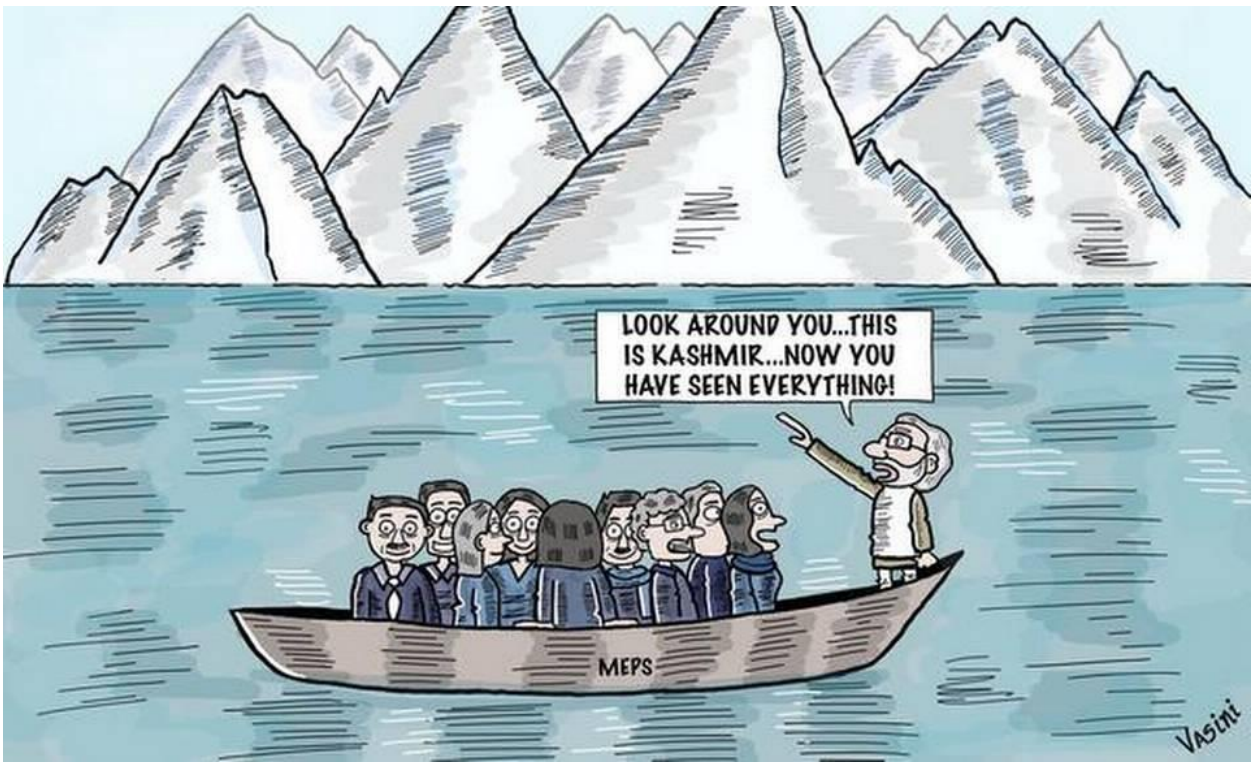

साभारः दि हिंदू

कश्मीर

एक राष्ट्र, एक निशान, एक संविधान?

श्रीमोई नंदिनी घोष

अनुच्छेद 370 और 35अ के इर्दगिर्द बुने तमाम कानूनों, संवैधानिक प्रावधानों, राष्ट्रपति के आदेशों, राजनीतिक इतिहास और कानूनी दाँव-पेंचों के जाल-ताल की वजह से इसको रद्द किए जाने की जो बहसें हाल-फिलहाल चल रहीं हैं उनको समझ पाना थोड़ा मुश्किल हो रहा है। वकील व कानूनी शोधकर्ता श्रीमोई नन्दिनी घोष के तीन लेखों की इस शृंखला में इस मामले की पेंचीदगी को समझने के लिए कुछ सरल से सवालों के जवाब ढूँढने की कोशिश की गई है। ये सवाल हैं,

अनुच्छेद 370 और 35अ क्या है/था? उनके साथ अचानक क्या किया गया? अंतरराष्ट्रीय कानून, संवैधानिक कानून, और जम्मू व कश्मीर के लोगों के बराबरी, ज़मीन व आज़ादी के अधिकारों के संदर्भ में इन सब का क्या मतलब है? इन बदलावों से क्या वाकई कोई फर्क पड़ता है? किसे और क्यों?

श्रीमोई इन सवालों के कानूनी निहितार्थों व नतीजों की पड़ताल के लिए इनको तीन क्षेत्राधिकारों की कसौटी पर रखेंगी। ये हैं: (i) अंतर्राष्ट्रीय, (ii) घरेलू (या संवैधानिक), और (iii) रोज़मर्रा के कानूनी दाँव पेंच – खासतौर पर उन मामलों में जिन पर जम्मू व कश्मीर राज्य को भंग किए जाने का सीधा प्रभाव पड़ा है। शृंखला के पहले आलेख में श्रीमोई ने 370, 35अ जैसे शब्दों और इनको इतिहास बनाने के लिए जो तिकड़में की गईं उनका कानूनी-ऐतिहासिक ब्यौरा दिया है। अगले दो आलेखों में इन तब्दीलियों के मतलब व उनके मायने पर नज़र डाली जाएगी।

जम्मू व कश्मीर के विशेष दर्जे को खत्म करने की कार्यवाही को एक तरह का संवैधानिक सर्जिकल स्ट्राइक कहा जा रहा है – किस तरह एक ही झटके में एक बेहद जटिल कानूनी उलझन को निपटा दिया गया। हमें बताया जा रहा है कि यह नियति के साथ बहुत समय से टल रही हमारी एक और मुलाक़ात है और वह नियति उस राष्ट्र की है जो आखिरकार एक संविधान और एक झंडे तले एक हो गया है। लेकिन क्या वाकई ऐसा है? इसका जवाब खोजने के लिए हमें अपने सवालों में से पहले दो से जूझना होगा जो आसान दिख ज़रूर रहे हैं लेकिन जिनके जवाब आसान नहीं हैं। पहला सवाल है कि अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35A की यह जटिल उलझन थी क्या बला? और दूसरा सवाल है कि उनके साथ ठीक-ठीक क्या किया गया है?

एक जटिल उलझन : अनुच्छेद 370 क्या है?

अनुच्छेद 370 भारतीय संविधान के इक्कीसवें भाग में दिए गए अस्थायी, संक्रमणकालीन व विशेष प्रावधानों में से एक प्रावधान है। इस भाग के प्रावधान विभिन्न किस्म के संवैधानिक अधिकारों और भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों (मिसाल के लिए, जिसमें गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, सिक्किम व नगालैंड शामिल हैं) के नागरिकों के लिए सुरक्षा और आज़ादी से पहले के संवैधानिक कानूनों व संस्थाओं (जैसे कि न्यायपालिका) को आज़ादी के बाद भी बरकरार रखने से जुड़े हुए हैं। 5 अगस्त 2019 व 6 अगस्त 2019 के संवैधानिक आदेशों (क्रमशः सीओ 272 व सीओ 273) के ज़रिए समूचे अनुच्छेद 370 को लगभग रद्द करते हुए उसका नया पाठ रचा गया है जो स्वशासन, क्षेत्रीय अखंडता और ज़मीन व जीविका पर सामूहिक अधिकारों के मामले में पुराने अनुच्छेद से मिली सीमित सुरक्षा को खत्म कर देता है।

दक्षिण एशिया का संयुक्त राष्ट्र का नक्शा

मूल अनुच्छेद 370 में जम्मू-कश्मीर की स्वतंत्र रियासत के शासक महाराजा हरि सिंह और भारतीय संघ के बीच अक्टूबर 1947 में कश्मीर की पहली लड़ाई की शुरुआत के समय हुई प्रवेश सन्धि (Instrument of Accession) [इस लेख में 'प्रवेश सन्धि ' यानी भारतीय संघ में प्रवेश करने की सन्धि और 'विलयन सन्धि ' (Instrument of Merger) यानी भारतीय संघ में विलय की सन्धि में फर्क किया गया है – अनुवादक] के प्रावधानों को ही थोड़े बदले स्वरूप में शामिल किया गया था। यह सन्धि हिन्दुस्तान में शामिल हुए दूसरे 140 रियासतों के साथ की गई सन्धियों जैसी ही थी। लेकिन जम्मू-कश्मीर का मामला दूसरों से अलग था क्योंकि यह एकमात्र रियासत थी जिसने विलयन की शर्तों में फेरबदल और अपनी संप्रभुता को बनाए रखने की कोशिश की। यह कोशिश उसने हिन्दुस्तानी संविधान के लिखे जाने की प्रक्रिया में शामिल होकर और उसके बाद भारतीय राज्य और जम्मू-कश्मीर राज्य के बीच एक समझौते के ज़रिए की। यह 1952 का दिल्ली समझौता कहलाता है जिसे हिन्दुस्तानी संसद ने मंज़ूरी दी। गौरतलब है कि महाराजा ने प्रवेश सन्धि पर दस्तखत किया था जो कानून बनाने की उनकी कुछ ताकत को अस्थायी तौर पर भारत को देता था। दूसरी रियासतों के हुक्मरानों की तरह उन्होंने विलयन सन्धि (Instrument of Merger) पर दस्तखत नहीं किया था (और न कभी बाद में ऐसा किया) जो रियासत को पूरी तरह हिन्दुस्तान में मिला दे। बाद के आलेखों में हम इस दौर की कुछ असाधारण राजनीतिक घटनाओं की तरफ नज़र डालेंगे – कत्लेआम, विद्रोह, और ज़्यादा कत्लेआम, युद्ध, युद्ध विराम, अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति, ज़िम्मेदारियों से पल्ला झाड़ना, चुनावों में दखलंदाज़ी, साजिश और तख्तापलट वगैरह वगैरह – ये सब उस कानूनी इतिहास के नाटक के अलग-अलग दृश्य हैं जिसका विराम प्रवेश सन्धि पर दस्तखत और जम्मू-कश्मीर के संविधान (1948-1957) के साथ हुआ। लेकिन फिलहाल हम अनुच्छेद 370 की तरफ चलते हैं।

कश्मीर के इलाके का संयुक्त राष्ट्र का नक्शा. 'भारतीय गणराज्य और सीमा के इलाके' के संयुक्त राष्ट्र के नक्शे में जम्मू-कश्मीर का विवादित इलाका शामिल नहीं है। आधिकारिक तौर पर जम्मू-कश्मीर का संघ से "एकीकरण" उसी के संविधान द्वारा 1957 में हो गया था। हिन्दुस्तान की सरकार किसी भी ऐसे नक्शे के प्रकाशन पर पाबंदी लगा देती है जिसमें समूचे जम्मू-कश्मीर को हिन्दुस्तान में न दिखाया गया हो।

संविधान सभा में कश्मीरी नुमाइंदों को शरीक किए जाने पर हुई बहसों, और अनुच्छेद 370 के मसौदे को तैयार किए जाने व उस पर हुई टिप्पणियों से यह ज़ाहिर है कि यह जम्मू-कश्मीर और हिन्दुस्तान के सम्बन्धों को तय करने के लिए एक संक्रमणकालीन उपाय था जिसे जम्मू-कश्मीर की कानूनी स्थिति के साफ होने तक बना रहना था। अक्टूबर 1949 में जब ये अनुच्छेद लिखा जा रहा था उस समय तक संयुक्त राष्ट्र (UN) कश्मीर विवाद में सक्रिय दखल दे रहा था। गौरतलब है कि हिन्दुस्तान ने जनवरी 1948 में पहली बार पहले कश्मीर युद्ध के समय यह विवाद इस अंतर्राष्ट्रीय संस्था के सामने पेश किया था। संविधान की ड्राफ़्टिंग कमेटी के सदस्य और बाद में कश्मीर मामलों के मंत्री एन गोपालस्वामी अय्यंगर ने संविधान सभा के सामने कहा: "[भारत सरकार] इस बात पर प्रतिबद्ध है कि [जम्मू व कश्मीर] राज्य के लोगों को यह फैसला करने का मौका दिया जाएगा कि वे इस गणतंत्र में रहना चाहते हैं या उससे बाहर जाना चाहते हैं। वह लोगों की इच्छा को एक रायशुमारी के ज़रिए तय करने को लेकर भी प्रतिबद्ध है बशर्ते अमन व व्यवस्था कायम हो और रायशुमारी की निष्पक्षता की गारंटी हो। हम इस बात पर भी सहमत हैं कि राज्य का संविधान और राज्य के ऊपर संघ के अधिकार-क्षेत्र का निर्णय लोगों की इच्छा के अनुसार संविधान सभा के ज़रिए किया जाएगा।"

किसी ने इस वक्तव्य के इस अंतरविरोध पर ध्यान नहीं दिया कि अगर वाकई राज्य के लोग भारतीय गणराज्य से बाहर जाने का फैसला करते हैं तो राज्य का भावी संविधान, उसको लिखने की प्रक्रिया और राज्य पर "संघ के अधिकार-क्षेत्र" जैसे मामलों में भारतीय गणराज्य का कोई इख्तियार नहीं होगा। लेकिन इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं क्योंकि यह मान्यता बड़ी व्यापक थी कि संयुक्त राष्ट्र में "उलझना" (ये अय्यंगर के ही शब्द हैं) एक गलती थी और संविधान सभा के सदस्यों की बड़ी संख्या का, जिसमें उसके अध्यक्ष डॉ राजेन्द्र प्रसाद भी शामिल थे, यह मानना था कि जम्मू-कश्मीर के भारत में शामिल होने को "बिना शर्त व पूर्ण" माना जाना चाहिए।

अनुच्छेद 370 का जो अन्तिम रूप 1950 में भारतीय संविधान में शामिल किया गया उसमें न तो संयुक्त राष्ट्र में चल रही प्रक्रिया का ज़िक्र था और न ही जम्मू-कश्मीर की विभाजित व विवादित स्थिति का जहाँ उसका दो बटे पाँचवा हिस्सा पाकिस्तान के कब्ज़े में था यानी उस पर न तो हिन्दुस्तान का और न ही महाराजा का सम्प्रभु नियंत्रण था। इसकी बजाय उसमें सिर्फ जम्मू-कश्मीर के लिए एक संविधान सभा का ज़िक्र किया गया है जो भारत के साथ राज्य के

सम्बन्ध को तय करेगी, इस अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए आदेशों को मन्ज़ूरी देगी और साथ ही, इस अनुच्छेद को भविष्य में रद्द करने का फैसला लेगी। (अगले लेख में मैं प्रवेश सन्धि और जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा की कानूनी स्थिति के बारे में फिर बात करूँगी)।

संविधान सभा में 1949 में शपथ लेते शेख अब्दुल्लाह। नवंबर 1949 में हिन्दुस्तानी सभा के कार्यकाल के खत्म होने के कुछ ही समय पहले जुलाई 1949 में जम्मू-कश्मीर के प्रतिनिधि मंडल को इसमें शामिल किया गया। इस प्रतिनिधि मंडल की भागीदारी को लेकर तमाम वजहों से विवाद हुए जिसमें से एक वजह यह थी कि यह सब 20 जून 1949 को महाराज हरि सिंह के पद छोड़ने के कुछ ही समय बाद हुआ। (स्रोत: द हिन्दू)

इस तरह, किसी विवाद का ज़िक्र किए बगैर अनुच्छेद 370 यह कहता है कि जम्मू व कश्मीर (भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 और पहली अनुसूची के अंतर्गत) भारतीय संघ की एक बुनियादी इकाई है। प्रवेश सन्धि की शर्तों के मुताबिक जम्मू-कश्मीर में भारतीय संविधान का कोई भी प्रावधान नहीं लागू होगा सिवाय अनुच्छेद 370 के जिसके बारे में समझ यह थी कि ये प्रवेश सन्धि का ही संवैधानिक रूप है। संविधान के पाठ में लाया गया यह प्रावधान भले ही खुद संविधान के दायरे को सीमित करने के लिए लाया गया हो लेकिन फिर भी इसने दो सम्प्रभु ताकतों – हिन्दुस्तान व जम्मू-कश्मीर के बीच हुए एक कानूनी समझौते को अनिवार्यतः भारतीय संविधानवाद की शक्ति संरचना में घसीट लिया। और ऐसा करते हुए इसने एक ऐसा मूल्यगत खाका बनाया जो आज भी हिन्दुस्तानी मानस में कश्मीर की कानूनी स्थिति की समझ पर हावी है चाहे वह किसी भी राजनीतिक धारा से प्रभावित हो।

अनुच्छेद 370 ने (i) हिन्दुस्तान की कानून बनाने की ताकत (सिवाय विदेशी मामलों, प्रतिरक्षा व संचार के तीन मामलों के), व (ii) भारतीय संविधान के प्रावधानों को जम्मू-कश्मीर पर अस्थायी रूप से लागू करने का तरीका और (iii) इसे आंशिक या पूर्ण रूप से निष्क्रिय बनाने का तरीका भी निर्धारित किया। यह तीनो काम राष्ट्रपति की घोषणाओं या आदेशों (Presidential Declaration or Orders) यानी कार्यकारी निर्णय (executive decree) से किए जा सकते थे। इससे राष्ट्रपति या दूसरे अर्थ में संघीय कार्यपालिका (यानी केन्द्र सरकार) को एक राज्य के ऊपर कानून बनाने और उसका संविधान तय करने की असाधारण ताकत मिल गई भले ही यह अस्थायी रही हो। यह शक्ति के विभाजन (division of power) और संघवाद (federalism) के बुनियादी संवैधानिक उसूलों के खिलाफ़ था।

इस अनुच्छेद में कहा गया था कि:

हिन्दुस्तानी संसद के कानून बनाने की ताकत को राष्ट्रपति के आदेश से जम्मू-कश्मीर में लागू किया जा सकता है। प्रवेश सन्धि में दिए तीन निश्चित विषयों के मामले में राष्ट्रपति ऐसा

आदेश राज्य सरकार से सलाह करने के बाद पारित कर सकते हैं और बाकी सभी वैधानिक विषयों के मामले में राज्य सरकार की सहमति लेने के बाद वे ऐसा आदेश दे सकते हैं। अनुच्छेद 1 और अनुच्छेद 370 को छोड़ कर भारतीय संविधान के बाकी सभी प्रावधान, और साथ ही उनके अपवाद व संशोधन राष्ट्रपति के आदेश से जम्मू-कश्मीर पर लागू किए जा सकते थे (अनुच्छेद 1 और 370 खुद अनुच्छेद 370 के अंतर्गत ही राज्य में लागू थे, इनके लिए आदेश की ज़रूरत नहीं थी)। इस मामले में भी उन तीन विषयों पर राज्य सरकार से सलाह करना और बाकी विषयों पर उसकी सहमति लेना ज़रूरी था।

खुद अनुच्छेद 370को जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा द्वारा सिर्फ राष्ट्रपति के आदेश से पूर्ण या आंशिक तौर पर रद्द किया जा सकता है या बदला जा सकता है।

अनुच्छेद 370 में आगे यह भी कहा गया था कि जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के अस्तित्व में आने से पहले राज्य सरकार की सहमति से भारतीय संसद के कानून बनाने की ताकत को जितनी बार जम्मू-कश्मीर में इस्तेमाल किया गया है, और भारतीय संविधान के प्रावधानों को जितनी बार जम्मू-कश्मीर में लगाया गया है (यानी, प्रवेश सन्धि में जिन विषयों का ज़िक्र नहीं है उनसे जुड़े राष्ट्रपति के जो आदेश जारी हुए हैं), उनको जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा से मंज़ूरी लेनी होगी, एक बार यह काम करना शुरू कर दे। अनुच्छेद 370 में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि जम्मू-कश्मीर संविधान सभा के भंग होने की स्थिति में क्या होगा। हो सकता है कि उस समय यह माना गया कि जम्मू-कश्मीर के भावी संविधान में जम्मू-कश्मीर व हिन्दुस्तान के भावी सम्बन्धों (जिसमें इस अनुच्छेद का सम्भावित खात्मा शामिल था) को तय किया जाएगा और इस मामले में भारतीय कार्यपालिका द्वारा किसी तरह के संक्रमणकालीन, असाधारण कार्यकारी ताकत के इस्तेमाल की ज़रूरत नहीं होगी।

प्रेमनाथ कौल मामले में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस अनुच्छेद के 'अस्थायी' चरित्र को स्वीकार किया। इस मामले में शेख अब्दुल्लाह के नेतृत्व में अंतरिम प्रशासन द्वारा लाए गए उन दूरगामी भूमि सुधारों को चुनौती दी गई थी जिसे युवराज कर्ण सिंह की घोषणा पर अक्टूबर 1950 में लागू किया गया। अपीलकर्ता एक ज़मींदार था जिसकी ज़मीने ज़ब्त कर ली गई थीं। उसका कहना था कि भूमि सुधारों को लागू करने वाला राजकीय आदेश अवैध था क्योंकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 ने सम्प्रभु ताकत के रूप में जम्मू-कश्मीर के लिए कानून बनाने की महाराज की वैधानिक हैसियत को खत्म कर दिया था। कोर्ट ने यह माना कि जम्मू-कश्मीर व भारत के सम्बन्ध का अन्तिम फैसला जम्मू-कश्मीर की विधान सभा लेगी। और जब तक वह ऐसा कोई फैसला लेती है तब तक महाराजा और (उनके मार्फत युवराज) एक सम्प्रभु राजा है जिसके पास 1939 के जम्मू-कश्मीर के संविधान के तहत कानून बनाने की ताकत है। लेकिन संविधान सभा के भंग किए जाने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने राय बदलते हुए यह माना कि चूँकि जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा ने खुद को 1957 में भंग करने से पहले अनुच्छेद

370 को रद्द करने या बदलने का कोई सुझाव नहीं दिया था और चूँकि उस अनुच्छेद में किसी और निकाय या संस्था को यह इसे बदलने या रद्द करने की शक्ति नहीं दी गई है इसलिए हिन्दुस्तान व कश्मीर के संवैधानिक सम्बन्धों के मामले में यह अनुच्छेद अब स्थायी हो चुका है। कोर्ट के इस नज़रिए ने हिन्दुस्तान-कश्मीर के सम्प्रभु संवैधानिक सम्बन्धों में भारी बदलाव लाने और उसे पूरी तरह उलटने के लिए संवैधानिक आदेशों के लगातार इस्तेमाल को वैधता दी है। इसकी वजह से केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के कुछ प्रमुख मामलों में, मिसाल के लिए, आपातकाल की घोषणा, या कानून बनाने की केन्द्र की ताकत में जम्मू-कश्मीर की स्वायत्तता बाकी राज्यों से भी सीमित हो गई।

अनुच्छेद 35अ क्या है?

अनुच्छेद 35अ एक विशेष प्रावधान था जो सिर्फ जम्मू-कश्मीर पर लागू था। अनुच्छेद 370 में दी गई संविधान संशोधन की प्रक्रिया का इस्तेमाल करते हुए इसे 1954 में राष्ट्रपति के आदेश (संवैधानिक (जम्मू-कश्मीर में अनुप्रयोग) आदेश, 1954) से संविधान में शामिल किया गया था। इस आदेश को अक्सर बुनियादी आदेश (Basic Order) भी कहा जाता है और इस में 35अ के अलावा संविधान के ढेरों दूसरे प्रावधानों को जम्मू-कश्मीर में लागू किया गया। इसमें नागरिकता सम्बन्धी प्रावधान, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र, और संविधान के भाग तीन में दिए मौलिक अधिकारों को (कुछ बड़े बदलावों के साथ) जम्मू-कश्मीर में लागू करना शामिल था। जम्मू-कश्मीर और हिन्दुस्तान के बीच के कानूनी सम्बन्ध को स्थापित करने में इस आदेश की बड़ी भूमिका रही। हालाँकि यह माना जाता है कि इसे 1952 के दिल्ली समझौता को कानूनी स्वरूप देने के लिए लागू किया गया, लेकिन यह उस समझौते की शर्तों से कहीं आगे जाता है। यह आदेश 1953 में शेख अब्दुल्लाह की गिरफ्तारी और जम्मू-कश्मीर के पहले प्रधानमंत्री के पद से हटाए जाने के छह महीने के भीतर पारित किया गया। इसके बाद के जितने भी राष्ट्रपति के आदेश पारित हुए (2019 के आदेशों तक) वे इस बेसिक ऑर्डर में संशोधन की तरह ही पारित किए गए हैं, शायद इसलिए ताकि उनकी संवैधानिक स्थिति को कोई चुनौती न दी जा सके क्योंकि वे सभी 1956 में जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा के भंग किए जाने के बाद पारित किए गए और अनुच्छेद 370 के मूल पाठ में ऐसी स्थिति का अनुमान नहीं लगाया गया था। साथ ही, इस अनुच्छेद में राष्ट्रपति के आदेश के संशोधन की कोई प्रक्रिया भी नहीं बनाई गई। 2019 के संवैधानिक आदेश (सी.ओ. 272) के साथ ही बेसिक ऑर्डर और उसके सभी संशोधनों को रद्द कर दिया गया है, और इसके साथ ही अनुच्छेद 35अ में वहाँ के स्थायी निवासियों से जुड़े कानूनी प्रावधान भी पूरी तरह खारिज हो गए हैं।

अनुच्छेद 35अ जम्मू-कश्मीर के 'स्थायी निवासियों' को एक किस्म का शुरुआती नागरिकता अधिकार देता था। उसमें लिखा था कि जम्मू-कश्मीर की विधानसभा द्वारा कुछ खास विषयों पर बनाए गए कानूनों को हिन्दुस्तानी संविधान के प्रावधानों के अंतर्गत इस आधार पर चुनौती नहीं

दी जा सकती कि वे दूसरे हिन्दुस्तानी नागरिकों के अधिकारों (मसलन, बराबरी के अधिकार, या मुक्त होकर कहीं भी आने-जाने के अधिकार) पर पाबन्दी लगाते हैं। इस तरह, जम्मू-कश्मीर की विधान सभा के पास कुछ खास विषयों पर कानून बनाने की विशिष्ट ताकत थी और ऐसे कानूनों या नियमों को भारतीय सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती थी। ये विषय निम्नलिखित थे –

(i) 'स्थायी निवासी' की परिभाषा;

(ii) जम्मू-कश्मीर में अचल सम्पत्ति के स्वामित्व के अधिकार;

(iii) जम्मू-कश्मीर में बसने के अधिकार;

(iv) राज्य सरकार के अधीन रोज़गार का अधिकार;

(v) तालीम के लिए छात्रवृत्ति और सरकारी अनुदान पाने का अधिकार।

अनुच्छेद 35A और जम्मू-कश्मीर के 1957 के संविधान में स्थायी निवासी की अवधारणा काफी हद तक20वीं सदी के पहले तीन दशकों में डोगरा राजाओं द्वारा जारी आदेशों व नियमों पर आधारित है। ये आदेश तब पारित हुए थे जब वहाँ के लोगों ने अपने नागरिक अधिकारों और पंजाब और दूसरी जगहों से आने वाले विदेशियों से अपनी ज़मीने, तालीम व आजीविका के साधनों की सुरक्षा के लिए संघर्ष किए। 1957 का जम्मू-कश्मीर का संविधान उन हिन्दुस्तानी नागरिकों को राज्य का स्थायी निवासी मानता है जो 14 मई 1954 को राज्य की प्रजा थे, या जो दस साल तक राज्य में रह रहे हों, और "कानूनी रूप से राज्य में अचल सम्पत्ति" हासिल की हो। इस प्रावधान में 'हिन्दुस्तान के नागरिक' इसलिए लिखा गया है क्योंकि राज्य का कानून जम्मू-कश्मीर में रहने वाले सभी लोगों पर लागू होता था जिसमें आज़ाद कश्मीर, गिलगिट और बाल्टिस्तान भी शामिल हैं। कश्मीर के संविधान में स्थायी निवासियों से जुड़े और भी कई प्रावधान थे जो संविधान के लागू होने से पहले की सेवा शर्तों और पदों को बरकरार रखते हैं, और जो गैर-स्थायी निवासियों को राज्य की विधानसभा का सदस्य बनने से, या सरकारी नौकरियों में नियुक्ति से रोकते हैं।

राज्य की विधान सभा और कार्यपालिका ने इन दशकों में कई कानून, उप-कानून और आदेश पारित किए हैं जो सम्पत्ति खरीदने, बेचने और सम्पत्ति पर स्वामित्व बनाने के स्थायी नागरिकों के विशिष्ट अधिकारों को सुरक्षित करते हैं; और जो अस्थायी नागरिकों के हाथ में ज़मीन जाने पर रोक लगाते हैं; और जो सरकारी नौकरियों, स्वास्थ्य सेवाओं, उच्च शिक्षा, राज्य द्वारा भरपाई पाने की योजनाओं, वोट देने और चुनाव में खड़े होने के मामलों से जुड़े हुए हैं। जम्मू-कश्मीर की विधानसभा के पास यह अधिकार है कि वह स्थायी निवासी की परिभाषा या उनको मिले

विशेषाधिकारों को दो-तिहाई बहुमत से पारित कानून से बदल दे। अनुच्छेद 35अ में और 1957 के जम्मू-कश्मीर के संविधान में स्थायी निवासियों के लिंग का कोई ज़िक्र नहीं किया गया है और न ही इस बात का कि वहाँ की स्थाई निवासी महिलाएँ अगर किसी अस्थायी निवासी से शादी कर लेती हैं तो वे कानूनी तौर पर किन्हीं विशेषाधिकारों से वंचित हो जाएँगी। हालाँकि अनुच्छेद 35A को हटाने के पीछे यह भी एक बड़ी वजह के तौर पर दिखाया गया है और सर्वोच्च न्यायालय में इसी आधार पर उसे चुनौती भी दी गई थी। इन संशोधनों के समर्थकों ने 'बराबरी' का जो तर्क दिया है उस पर और लैंगिक व जातिगत भेदभावों के बारे में मैं इस शृंखला के तीसरे लेख में बात करूँगी। फिलहाल इतना कहना काफी है कि इन तमाम कानूनों को अनुच्छेद 35A से जो संवैधानिक सुरक्षा मिली हुई थी वह इसके रद्द हो जाने से खत्म हो गई है।

1948 में नेहरू ने अमन कायम करने के लिए कश्मीर विवाद को संयुक्त राष्ट्र के सामने रखा। उनको उम्मीद थी कि संयुक्त राष्ट्र विलय को कानूनी व अंतिम मान कर हिन्दुस्तान का पक्ष लेगा, पाकिस्तानी नियंत्रण के इलाके को वापस हिन्दुस्तान के हवाले करवाएगा और पाकिस्तानी "हमले" की आलोचना करेगा। लेकिन 1948 के मध्य तक भारत-पाकिस्तान के मसले पर संयुक्त राष्ट्र आयोग के बनने तक यह साफ हो गया कि संयुक्त राष्ट्र एक तरह का बीच-बचाव करना चाहता है जिसमें किसी तीसरे पक्ष द्वारा आयोजित रायशुमारी भी शामिल थी। इसके अलावा, शेख अब्दुल्लाह की आपातकालीन सरकार को समूचे इलाके की एकमात्र वैध सत्ता मान कर वह हिन्दुस्तान का पक्ष लेने को भी तैयार नहीं दिख रहा था। इन कार्टूनों की पहली कड़ी "UNO-pathic treatment" ("संरा-वेदना" ?), जो 'शंकर्स वीकली' में प्रकाशित हुई थी (11 जुलाई 1948), में दिखाया गया है कि परेशान हिन्दुस्तान अपने बच्चे कश्मीर को संयुक्त राष्ट्र के पास ले गया है, लेकिन डॉक्टर बच्चे की बजाय उसे ही जबरन दवा खिला रहा है। दूसरे कार्टून 'परछाई को पकड़ना' में (25 जुलाई 1948) में कश्मीर कोई बच्चा नहीं बल्कि बेकाबू बैल है जिसको संयुक्त राष्ट्र आयोग के लोग काबू में करने की कोशिश कर रहे हैं और हताश नेहरू देख रहे हैं। इसमें टोपी पहने शख्स संभवतः चेस्टर निमिट्ज़ हैं जो पूर्व अमरीकी कमांडर थे और जिनको संयुक्त राष्ट्र ने रायशुमारी के प्रशासक के तौर पर नियुक्त किया था।

औचक हमला

चूँकि अनुच्छेद 370 से जुड़ी प्रक्रियागत सुरक्षाओं के चलते इसे सीधे-सीधे संशोधित करना या रद्द करना खासा मुश्किल था इसलिए हिन्दुस्तान की सरकार ने अपने मकसद को हासिल करने के लिए तीन चरणों का एक घुमावदार रास्ता अपनाया। कुछ संविधान विशेषज्ञों का कहना है कि इस तरह 'पिछले दरवाज़े' का इस्तेमाल करने की बजाय संसद को अनुच्छेद 368 में दी गई संशोधन की सामान्य प्रक्रिया को अपनाना चाहिए था। लेकिन इस तरह नज़रिए में इस तथ्य को ध्यान में नहीं रखा गया कि 1954 के बेसिक ऑर्डर में यह प्रावधान था कि हिन्दुस्तानी संविधान में हुए संवैधानिक संशोधन जम्मू-कश्मीर में तब तक नहीं लागू होंगे जब तक कि

राष्ट्रपति के आदेश से ऐसा नहीं किया जाए। अनुच्छेद 370 को सीधे-सीधे पूरी तरह खारिज कर देना कानूनी तौर पर उतना सही नहीं होता क्योंकि सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसकी बुनियाद पर ही जम्मू-कश्मीर भारतीय संघ से जुड़ा हुआ है। इस सम्बन्ध के लिए नई बुनियाद बनाए बिना इसे पूरी तरह रद्द कर देने का मतलब होगा इस सम्बन्ध को ही रद्द कर देना। यही वजह है कि अनुच्छेद का नया पाठ इसमें दी गई सुरक्षाओं व प्रक्रियाओं को खत्म करता है और हिन्दुस्तान के संविधान को जम्मू-कश्मीर में पूरी तरह लागू कर देता है।

पहला कदम

केन्द्र सरकार ने 5 अगस्त 2019 को सीओ 272 पारित करने के लिए अनुच्छेद 370(1)(d) का इस्तेमाल किया जो संविधान संशोधन/क्रियान्वयन के लिए राष्ट्रपति के आदेश से जुड़ा हुआ है। चूँकि जम्मू-कश्मीर पर उस समय राष्ट्रपति शासन लागू था इसलिए यह मान लिया गया कि अनुच्छेद 370 में राज्य सरकार की सहमति की जो शर्त है उसके लिए राज्यपाल की सहमति लेना काफी है। संविधान के प्रावधानों को जम्मू-कश्मीर में लागू करने के लिए पहले भी कई बार ऐसा किया जा चुका है। इसकी सबसे ताज़ा मिसाल है मार्च 2019 की जब सीमा के पास रहने वाले निवासियों के लिए सरकारी पदों में आरक्षण देने से जुड़ा एक अध्यादेश लागू करने के लिए इसका इस्तेमाल किया गया। यह सी.ओ. ये तीन काम करता है,

ये 1954 के संवैधानिक आदेश (बेसिक ऑर्डर) और उसके सभी संशोधनों को रद्द कर देता है;
ये हिन्दुस्तानी संविधान के सभी प्रावधानों को जम्मू-कश्मीर पर लागू कर देता है;
ये अनुच्छेद 367 को भी संशोधित करता है। यह व्याख्या से जुड़ा प्रावधान है जो अर्थों को लेकर किसी दुविधा को सुलझाने में मदद करता है। इसमें नया जोड़ा गया 367(4) दो बाते कहता है:
(क) जहाँ तक जम्मू-कश्मीर का मामला है "यह संविधान" का मतलब होगा "यह संविधान जैसा कि जम्मू-कश्मीर में लागू किया गया है" ।

(ख) "सदर-ए-रियासत" (जम्मू-कश्मीर के संविधान के तहत अप्रत्यक्ष तौर पर चुना गया संवैधानिक मुखिया जिसे हिन्दुस्तानी संविधान में भी मान्यता दी गई थी) का मतलब होगा राज्यपाल और सरकार का उल्लेख होने पर मतलब होगा मंत्रीमंडल की सलाह पर काम कर रहा राज्यपाल। यह सब 1965 के संवैधानिक आदेश में बदला गया था लेकिन चूँकि बेसिक ऑर्डर और उसके सभी संशोधनों को रद्द कर दिया गया है इसलिए अनुच्छेद का पाठ अपने मूल स्वरूप में चला गया है।

(ग) सबसे बड़ी बात यह है कि अनुच्छेद 370(3), जो अनुच्छेद 370 के प्रभाव के खात्मे से जुड़ा हुआ है, उसमें "संविधान सभा" का मतलब होगा "राज्य की विधान सभा" ।

दूसरा कदम

इसके बाद केन्द्र सरकार ने अनुच्छेद 370 को खत्म करने के लिए 370(3) में दिए गए "संविधान सभा" के नए अर्थ का इस्तेमाल किया एक वैधानिक संसदीय प्रस्ताव पारित करने के लिए। इस प्रस्ताव में राष्ट्रपति को एक सार्वजनिक अधिसूचना जारी की सलाह दी गई जिसमें तत्कालीन अनुच्छेद 370 के पाठ को बदल कर उसमें नया पाठ जोड़ा गया जिसके अनुसार हिन्दुस्तानी संविधान जम्मू-कश्मीर पर पूरी तरह लागू होगा और कोई भी "कानून, दस्तावेज़, कोर्ट के फैसले, अध्यादेश, आदेश, उप-नियम, नियम, अधिनियम, अधिसूचना, परम्परा/रिवाज या व्यवहार [...] या कोई कानूनी प्रपत्र, सन्धि या समझौता" इसमें रुकावट नहीं बनेगा। इस तरह अनुच्छेद 370 को व्यवहारिक तौर पर पूरी तरह से खत्म ही कर दिया गया। राज्य सभा में अपने भाषण में गृह मंत्री अमित शाह ने समझाया कि चूँकि जम्मू-कश्मीर में अनुच्छेद 356 (संवैधानिक आदेशों के तहत संशोधित रूप में जम्मू-कश्मीर में लागू) के तहत राष्ट्रपति शासन लागू है इसलिए राज्य की विधानसभा की सभी शक्तियाँ इस समय संसद के पास हैं। इसके मद्देनज़र और चूँकि (सी.ओ. 272) के ज़रिए संविधान सभा की जगह राज्य विधानसभा ने ले ली है इसलिए केन्द्रीय संसद ऐसा प्रस्ताव पारित कर सकती है।

इस वैधानिक प्रस्ताव के साथ-साथ गृह मंत्री ने जम्मू-कश्मीर (पुनर्गठन) बिल, 2019 भी संसद में पेश किया जिसमें जम्मू-कश्मीर और लद्दाख को केन्द्र शासित प्रदेश बना दिया गया। इसके तहत 31 अक्टूबर 2019 से जम्मू-कश्मीर के पास विधान सभा होगी मगर लद्दाख के पास नहीं। पहले की स्थिति में यह कानून बेसिक ऑर्डर के खिलाफ़ जाता जो जम्मू-कश्मीर में हिन्दुस्तानी संविधान के अनुच्छेद 3 के क्रियानवयन को प्रतिबंधित करता था और इस तरह उसकी क्षेत्रीय अखंडता को बरकरार रखे हुए था। गौरतलब है कि अनुच्छेद 3 केन्द्र सरकार को किसी भी राज्य की सीमा को बदलने की ताकत देता है।

इसके अलावा गृह मंत्री ने जम्मू-कश्मीर आरक्षण (दूसरा संशोधन) बिल 2019 भी पेश किया जो जम्मू-कश्मीर आरक्षण कानून 2004 को संशोधित करके सीमा से लगे इलाकों के निवासियों को आरक्षण देता है। इस बाबत इसी साल मार्च में जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल ने एक अध्यादेश पारित किया था। दोनो बिल संसद में निर्विरोध पारित हो गए।

तीसरा चरण

इसके बाद केन्द्र सरकार ने 6 अगस्त 2019 को एक और संवैधानिक आदेश पारित किया (सी.ओ. 273), जो असल में एक सार्वजनिक अधिसूचना थी जो संसदीय प्रस्ताव में पारित बदलावों को औपचारिक रूप से लागू करती है। इसके साथ ही वह मूल अनुच्छेद 370 और बेसिक ऑर्डर के क्रियान्वयन को प्रतिबन्धित करती है। इसमें यह आदेश दिया गया कि अब जम्मू-कश्मीर हिन्दुस्तानी संविधान के प्रावधानों के अनुसार शासित होगा और किसी कानून,

सन्धि या कानूनी उपकरण या दस्तावेज़ से इसमें कोई रुकावट नहीं आएगी। और इस तरह इस काम को अन्जाम दिया गया।

मौजूदा हालत

हिन्दुस्तान-कश्मीर के बीच के संवैधानिक सम्बन्धों में किए गए इस उलटफेर के क्या नतीजे होंगे इसका पता तो आने वाले दिनों में चलेगा, जैसे-जैसे कानून के अनजान मोड़ सामने आएँगे। मिसाल के लिए, हालाँकि इन बदलावों से वहाँ के मौजूदा कानूनों और1957 के संविधान को रद्द करने, या कोर्ट में इस आधार पर चुनौती देने के रास्ते खुल गए हैं कि ये हिन्दुस्तानी संविधान के प्रावधानों के खिलाफ़ हैं, लेकिन जब तक कि इनको विधान सभा सीधे तौर पर खारिज न करे और इनकी जगह दूसरे कानून न लाए या कोर्ट इनको रद्द न कर दे तब तक ये लागू रहेंगे। जैसा कि कारवाँ पत्रिका में बताया गया अभी हाल तक वहाँ के राज्य सचिवालय पर दो झन्डे फहरा रहे थे। कश्मीर हाई कोर्ट ने 2015 के अपने एक फैसले में इसे कानूनी रूप से सही ठहराया था और यह फैसला अभी भी एक कानून है। इस तरह भले ही दो झंडों के अस्तित्व से हंगामा बरपा हुआ था और कश्मीर के झंडे को झुकाने की कवायद को टीवी पर बड़े ज़ोर-शोर से दिखाया गया लेकिन झंडा हटाने की कार्यवाही का कोई कानूनी आधार नहीं है। जम्मू-कश्मीर का संविधान, जो झंडे को मान्यता देता है (धारा 144), वह चाहे इन संवैधानिक बदलावों से बेमानी हो गया हो लेकिन वह अभी भी एक कानून है जब तक कि उसे औपचारिक तौर पर आंशिक या पूर्ण रूप से कोर्ट या संसद द्वारा खारिज न कर दिया जाए। नए अनुच्छेद 370 के आधार पर संसद या कोर्ट इस तरह की विधाई शक्ति का इस्तेमाल कर सकती है या नहीं, वह भी तब जबकि जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा भंग हो चुकी है, इस पर बड़ा संवैधानिक सवाल है और इस तरह की कार्यवाही को चुनौती दी जा सकती है।

लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं कि कुछ बदला ही नहीं है। जम्मू-कश्मीर (पुनर्गठन) कानून की पाँचवीं अनुसूची के अंतर्गत 106 केन्द्रीय कानून दो नवगठित केन्द्र शासित प्रदेशों में लागू होंगे। राज्य की विधानसभा व राज्यपाल द्वारा पारित कुल 330 कानूनों में 164 लागू रहेंगे जबकि 166 को हटा दिया जाएगा। सात कानूनों में संशोधन किया जाएगा (ये प्रमुख रूप से ज़मीन से जुड़े कानून हैं)। 1957 का जम्मू-कश्मीर का संविधान निरस्त नहीं किया गया है और ये अब भी वैध कानून है। नई व्यवस्था में पुलिस और कानून-व्यवस्था केन्द्र का विषय होगा। जम्मू-कश्मीर सशस्त्र सैन्य बल विशेषाधिकार कानून 1990 (Jammu & Kashmir Armed Forces Special Powers Act) और सार्वजनिक सुरक्षा कानून 1978 (Public Safety Act) उन कानूनों की अनुसूची में शामिल किए गए हैं जो अब भी लागू हैं। इसके अलावा, राष्ट्रीय सुरक्षा कानून 1980 भी अब जम्मू-कश्मीर में लागू होगा। इस तरह राज्य की ताकत को बढ़ाने वाले निवारक कानूनों में और इजाफा ही होगा। सम्पत्ति के लेन-देन का कानून (जम्मू-कश्मीर ट्रान्सफर ऑफ़ प्रॉपर्टी एक्ट 1920) और ज़मीन की खरीद-बिक्री का कानून (जम्मू-कश्मीर लैंड एलिएनेशन एक्ट 1930)

को हटा दिया गया है। जम्मू-कश्मीर लैंड ग्रान्ट्स एक्ट 1960 के तहत राज्य की ज़मीनों को गैर-निवासी लोगों को देने पर लगी रोक को खत्म कर दिया गया है। इसी तरह, जम्मू-कश्मीर बिग लैंडेड एस्टेट्स एबॉलिशन एक्ट 2007 के तहत निजी ज़मीनों को गैर-निवासियों को देने पर लगी रोक को भी हटा दिया गया है। जम्मू-कश्मीर भूमि अधिग्रहण कानून को हटा कर उसकी जगह केन्द्रीय भूमि अधिग्रहण कानून लागू कर दिया है। जम्मू-कश्मीर की 2004 की औद्योगिक नीति के तहत पहले ही औद्योगिक सम्पत्ति को 90 साल के लिए लीज़ पर देने का प्रावधान था। नए बदलावों से निजी व सार्वजनिक निकाय ज़मीन पर मालिकान हक बना सकेंगे। अब केन्द्रीय शत्रु सम्पत्ति कानून 1968 भी यहाँ लागू होगा जिससे जम्मू-कश्मीर कस्टोडियन ऑफ़ प्रॉपर्टीज़ (सम्पत्ति का संरक्षण करने वाला निकाय) के पास जो ज़मीनें हैं इनकी बड़े पैमाने पर खरीद-फरोख्त होगी। यह ज़मीनें उन लोगों की हैं जो कश्मीर के अधूरे और अंतहीन विभाजन से विस्थापित हुए हैं और इस नए कदम के चलते इन लोगों की वापसी के सभी रास्ते भी बन्द हो जाएँगे। स्थानीय निकाय (पंचायत वगैरह) के चुनाव, जो पहले से ही विद्रोह के खिलाफ़ हिन्दुस्तान के युद्ध के केन्द्र में स्थित सैन्यीकृत शासन व विकास की "जन-केन्द्रित" नीतियों के प्रमुख औजार रहे हैं उनका और भी ज़्यादा इस्तेमाल इस तरह की नीतियों को आगे बढ़ाने के लिए किया जाएगा। इन सबके चलते ज़मीन के मालिकाने और इस्तेमाल, आबादी के स्वरूप और साथ ही लोगों पर निगरानी व नियंत्रण के तन्त्र के चरित्र, उसके ढाँचे और गहनता में भारी बदलाव होने के आसार हैं।

जैसा कि अक्सर कहा जाता है, यह सही है कि अनुच्छेद 370 जिस विधायी स्वायत्तता की संवैधानिक गारंटी देता था उसे धीरे-धीरे लगभग खोखला ही कर दिया गया था। 1957 का जम्मू-कश्मीर का संविधान, जो भारतीय राज्य के अनुसार कश्मीरी अवाम के लोकप्रिय मत का जीवंत स्वरूप है और जिसके चलते वहाँ रायशुमारी की ज़रूरत ही नहीं रही, वह संविधान एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसमें अधिकारों का कोई ज़िक्र ही नहीं है। यह संविधान एक ऐसी संविधान सभा ने बनाया था जिसके चुनावों में धांधली हुई थी, जिसकी वैधता पर संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद ने सवाल खड़ा किया था, जिसके नेता शेख अब्दुल्लाह को संविधान का मसौदा बनाने के बीच में ही उनके पद से हटा कर जेल में डाल दिया गया था। इस संविधान में हिन्दुस्तानी न्यायपालिका, विधायिका व कार्यपालिका के अतिक्रमण से बचाने के लिए दिए गए सुरक्षा के उपायों को अक्सर राजनीतिक तख्तापलट के बीच में पारित राष्ट्रपति के आदेशों, संविधान संशोधनों और कोर्ट के फैसलों से धीरे-धीरे खत्म कर दिया गया था। वहाँ के स्थायी निवासियों को दिए गए अधिकारों व सुरक्षा को छोड़ कर यह अधिकारों के नाम पर जम्मू-कश्मीर के लोगों को बमुश्किल ही कुछ देता है। यहाँ तक की शेख अब्दुल्लाह के 'नया कश्मीर मेनिफेस्टो' (नए कश्मीर का घोषणापत्र) में लैंगिक बराबरी, काम और तालीम के अधिकार के जो क्रान्तिकारी आदर्श हैं उनको भी राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की श्रेणी में डाल दिया गया है जिनको लागू कराने के लिए कोर्ट के दरवाज़े नहीं खटखटाए जा सकते हैं।

इसकी बजाय जम्मू-कश्मीर के संविधान की प्रस्तावना और धारा 3 में लिखा है कि जम्मू-कश्मीर हिन्दुस्तान का अभिन्न हिस्सा है और हमेशा रहेगा। इसमें इसके क्षेत्र में उन सभी इलाकों को शामिल किया गया है जो 15 अगस्त 1947 महाराजा की सम्प्रभुता या शासन के अंतर्गत थे। इस तरह इस समस्या से कन्नी काट ली गई है कि अक्टूबर 1947 में प्रवेश सन्धि पर दस्तखत करते समय महाराजा का अपने राज्य के समूचे इलाके पर नियंत्रण नहीं था। और साथ ही इसमें हिन्दुस्तान के साथ अनंत काल के एकीकरण की बात की गई है जो न तो प्रवेश सन्धि में है और न ही हिन्दुस्तानी संविधान में। हिन्दुस्तान के तमाम केन्द्रीय कानूनों को जम्मू-कश्मीर में लागू करने वाले विभिन्न कानूनों के अंतर्गत सीबीआई और राष्ट्रीय जाँच एजेंसी (एनआईए) जैसी केन्द्रीय एजेंसियों को जम्मू-कश्मीर में काम करने की छूट दी गई है। इसके अलावा, सूचना के अधिकार, आरक्षण, बाल यौन शोषण के रोकथाम जैसे विषयों पर केन्द्र से मिलते-जुलते कानून ही वहाँ की विधान सभा ने बनाए हैं जिसके चलते जम्मू-कश्मीर और बाकी राज्यों के कानूनी ताने-बाने में बहुत कम अंतर है। अंतर सिर्फ वहाँ है जहाँ पुलिस व सशस्त्र बलों द्वारा बेलगाम ताकत के इस्तेमाल से जुड़े खास कानूनों का सवाल आता है।

इतनी चोटों के बावजूद अनुच्छेद 370 और 35A की वजह से इतनी जगह तो बन ही गई थी कि उच्च शिक्षा, प्रशासनिक सेवाओं, बिजली कानूनों, कृषि सम्पत्ति, विस्थापितों की सम्पत्ति, ज़मीन का लगान, बँटाई, सरकारी योजनाओं, अनुकम्पा नियुक्तियों, विद्रोही गतिविधियों से जुड़ी मौतों वगैरह के मामलों में तमाम तरह के कानून, उप-कानून और नियम बनाए गए थे। विधाई या न्यायिक प्रक्रिया से इनको रद्द करने और इनकी जगह नए कानून लाने का काम आसान नहीं होगा बल्कि हो सकता है इसमें सालों लग जाए। और अगर वाकई ऐसा होता है तो उस समय तक जम्मू-कश्मीर का प्रशासन उन्हीं संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों से चलेगा जो नई व्यवस्था में सीधे-सीधे असंवैधानिक हैं। पिछले सालों में राज्य की न्यायपालिका ने कश्मीर में हिन्दुस्तानी फौजों की ज़्यादतियों की अनदेखी करके उनके मनमानेपन को सामान्य बनाने का काम किया है लेकिन जहाँ तक राज्य के संविधान और स्थायी निवास के अधिकारों की सुरक्षा का सवाल है इसमें वहाँ की न्यायपालिका ने कड़ा रुख अपनाया है। मिसाल के लिए, वहाँ के उच्च न्यायालय ने यह माना कि हिन्दुस्तानी संविधान के वे संशोधन जो जम्मू-कश्मीर के संवैधानिक ढाँचों को बिना उसकी सहमति के एकतरफा बदलते हैं वे अवैध हैं। कोर्ट ने कहा कि जहाँ तक स्थायी निवासियों के सम्पत्ति के अधिकार का सवाल है जम्मू-कश्मीर का संविधान इस मामले में एक तरह की सम्प्रभु सुरक्षा प्रदान करता है। अब जो बदलाव हुए हैं उनसे कुछ अभूतपूर्व और असम्भव किस्म की कानूनी उलझने, असंगतियाँ, व कानूनी टकराव पैदा होने के आसार हैं। खासतौर से इसलिए कि जम्मू-कश्मीर के संविधान में उसका जो क्षेत्र है वह अब दो केन्द्र शासित प्रदेशों में बँट चुका है – एक के पास विधानसभा होगी जबकि दूसरे के पास नहीं। दोनों के ऊपर केन्द्र का सीधा शासन होगा, लेकिन दोनों के पास अपना (एकीकृत) संविधान भी होगा।

सच तो यह है कि ज़मीन के मालिकाने और रोज़गार सुरक्षा से जुड़े नियमों-कानूनों के ढाँचे को, या दूसरे शब्दों में जम्मू-कश्मीर के संविधान और अनुच्छेद 35अ में जिन अधिकारों की गारंटी दी गई थी उनको खत्म करने की निरर्थकता खुद इस सरकार को भी तेजी से समझ में आ रही है। एक वरिष्ठ हिन्दुस्तानी अधिकारी ने हाल ही में कहा कि जम्मू-कश्मीर की चुनी हुई सरकार वहाँ की भूमि नीति पर फैसला करेगी। जम्मू-कश्मीर में भाजपा नेता निर्मल सिंह ने कह ही दिया है कि पार्टी रोज़गार के अधिकार के मामले में निवासियों को सुरक्षा देने की माँग उठाएगी। दूसरे लफ्ज़ों में, यह सही है भारी संवैधानिक उथल-पुथल हुआ है जो आज की तारीख में लगता है कि अब उलटा नहीं जा सकता लेकिन जहाँ तक रोज़मर्रा के दायरे की बात है तो जम्मू-कश्मीर पर फतह न तो पूर्ण है और न ही वैसी अविवादित जैसा कि लड्डू बाँटने वाली पब्लिक सोचती है।

(कश्मीर ख़बर से साभार)

अनुच्छेद 370 के कानूनी मायने: प्रचार के पीछे की सच्चाई

मिर्ज़ा साइब बेग़

हाल में अनुच्छेद 370 हटा दिया गया, जो कश्मीर और भारत के बीच की एकमात्र कानूनी कड़ी थी. यह लेख इससे जुड़ी कानूनी संरचनाओं और उनके मायनों का विश्लेषण है. यह उनके लिए है जो कानून व्यवस्था या संवैधानिक प्रावधानों की आवश्यकता को ज़रूरी नहीं समझते. यह उनके लिए भी सहायक है जो जानना चाह रहे हैं कि सही मायनों में 370 हटने से क्या नुकसान हुआ है या इन प्रावधानों ने कश्मीरियों के लिए पूर्व में क्या किया था.

विभाजन कानूनी तौर पर ग़लत और असंवैधानिक क्यों है

विभाजन की वैधता के संदर्भ में- इसकी अवैधता पहले भी संशोधनों को रोक नहीं पायी है, पर इस मुद्दे के कानूनी पक्ष को समझना अफ़वाहों और संदेहों को दूर करने में मदद करेगा.

विलय पत्र (इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ ऐक्सेशन) धारा 6: 'इस विलय पत्र का कोई भी हिस्सा अधिराज्य के विधान मंडल को यह अनुमति नहीं देता कि वह इस राज्य के लिए ऐसा कोई भी कानून बनाये, जो किसी भी उद्देश्य के लिए भूमि-अधिग्रहण अधिकृत करे' .

विलय पत्र (इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ ऐक्सेशन) धारा 7: 'इस विलय पत्र का कोई भी हिस्सा किसी भी प्रकार से भविष्य में भारतीय संविधान को स्वीकार करने की प्रतिबद्धता नहीं माना जायेगा' . सीमाओं में फेरबदल: भारतीय संविधान का अनुच्छेद 3 संसद को राज्यों की सीमाएं बदलने की ताक़त देता है. अनुच्छेद 3 से जुड़ी शर्त में कहा गया है कि 'इस उद्देश्य से कोई भी विधेयक संसद के दोनों में से किसी भी सदन में नहीं लाया जायेगा, जब तक कि वह विधेयक राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य की विधानसभा को अपना मत रखने के लिए भेजा न गया हो' .

इसका मतलब यह है कि केंद्र सरकार के लिए सीमाओं के परिवर्तन के बारे में राज्य की राय मांगना ज़रूरी है, हालांकि केंद्र सरकार राज्य विधान-मंडल की राय से बाध्य नहीं है. उदाहरण के तौर पर, हाल में आंध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 के मामले में, इससे संबंधित विधेयक राज्य विधान-मंडल द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था. इस अस्वीकृत बिल को केंद्र सरकार द्वारा संशोधित किया गया, और भारत के राष्ट्रपति द्वारा, दूसरी बार राज्य विधान-मंडल के विचार प्राप्त किये बिना, इस विधेयक की संसद में सिफारिश की गयी. कश्मीर के मामले में स्थिति इतनी सीधी नहीं हैः 1953 में शेख अब्दुल्ला की गिरफ़्तारी और बर्ख़ास्तगी के बाद भारत सरकार ने संविधान आदेश {दि कॉन्स्टिट्यूशन (ऐप्लिकेशन टू जम्मू ऐंड कश्मीर) ऑर्डर}, 1954 पारित किया जो कि कानून मंत्रालय की अधिसूचना संख्या S.R.O. 1610, तारीख़ 14 मई 1954 को भारत के राज-पत्र द्वारा प्रकाशित हुआ. इस आदेश के चलते जम्मू और कश्मीर के

लोगों को पूर्वव्यापी प्रभाव से भारतीय संविधान की शुरूआत से ही भारतीय नागरिक माना गया, जो 1950 से प्रभावी है. 1954 से लेकर आजतक, पिछले 65 सालों में, इस आदेश को 50 से ज़्यादा बार संशोधित किया गया है, जिससे भारतीय राज्य का शासन-क्षेत्र विलय पत्र (इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ ऐक्सेशन) की सहमति से कहीं ज़्यादा फैलाया गया है.

जम्मू और कश्मीर (राज्य) स्वराज्य समिति की रिपोर्ट 2000, कहती है कि "यह काफ़ी स्पष्ट है कि 1953 के बाद से राज्य की स्वायत्तता के कटाव की प्रक्रिया इतनी तेज़ थी कि भारत के संविधान की धारा 370, जो कि भारतीय संघ में राज्य की विशेष स्थिति की गारंटी और संरक्षण सुनिश्चित करने वाली थी, इसको पूरी तरह से खोखला कर दिया गया था ... ". हालांकि, उसी 1954 के आदेश ने अनुच्छेद 3 में निम्नलिखित शर्त भी जोड़ीः "बशर्ते कि जम्मू और कश्मीर राज्य के क्षेत्र को बढ़ाने या कम करने या उस राज्य के नाम या सीमा को बदलने के लिए कोई भी विधेयक राज्य के विधान-मंडल की सहमति के बिना संसद में प्रस्तुत नहीं किया जायेगा" . यहां ज़रूरी मतभेद "सहमति" और विचारों की अभिव्यक्ति मात्र के बीच है. इसलिए जम्मू-कश्मीर की स्थिति आंध्र प्रदेश जैसी नहीं है. इस शर्त का प्रभाव यह है कि जम्मू और कश्मीर राज्य की विधान सभा की "सहमति" के बिना जम्मू और कश्मीर राज्य के क्षेत्र, नाम या सीमा को बदलने की कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है.

वास्तविक तौर पर भारत कश्मीर पर सैन्य और राजनीतिक प्रभाव से नियंत्रण रखता है, जिसका फ़ायदा संशोधनों को लाने के लिए उठाया जा चुका है, लेकिन क़ानूनी तौर पर अभी भी विभिन्न प्रावधानों, राष्ट्रपति के आदेशों और संवैधानिक सुरक्षाओं से बाधित है.

क्या अब संविधान अपहृत है?

केवल धारा 370 के माध्यम से अनुच्छेद 1 को जम्मू-कश्मीर तक बढ़ाया गया था. यहां तक कि 1954 का आदेश भी, जो पूर्वव्यापी रूप से कश्मीरियों को भारत का नागरिक बनाता है, धारा 370 के माध्यम से ही पारित किया गया था. इससे पहले कि भारत के राष्ट्रपति इसे भंग कर पायें, धारा 370 खुद ही संविधान सभा की सिफारिश को अनिवार्य बताती है. राष्ट्रपति भी इस शक्ति का प्रयोग धारा 370 के माध्यम से ही करते हैं. यह कदम अपमानजनक रूप से असंवैधानिक है. अगर यह पारित हो भी जाता है, तब भी इसे अदालत में चुनौती ज़रूर दी जानी चाहिए. ऊपर दिये गये अनुलग्नक में राष्ट्रपति ने 1954 के आदेश में संशोधन किया है जो कहता है कि "विधान सभा" के संदर्भ को "राज्यपाल" के संदर्भ के रूप में माना जायेगा. यह धारा 370 द्वारा दी गयी शक्तियों के तहत किया जा रहा है- जो स्वयं राष्ट्रपति को ऐसी कार्रवाई करने की अनुमति नहीं देता है. यदि भारतीय यह नहीं देख पा रहे हैं कि भारतीय संविधान का कैसे अपहरण किया जा रहा है, तो निश्चिंत रहें, जब यह खाका आप तक बढ़ाया जायेगा, तब आपको भी ऐसी ही उदासीनता को भुगतना पड़ेगा. अभी के लिए, आपकी चुप्पी कई लोगों को मौत की

तरफ़ ढकेलेगी और तारीख आपकी, आपके देश की कड़े संघर्ष से जीती गयी स्वतंत्रताओं की रक्षा न कर पाने की नितांत विफलता को दर्ज करेगी.

कानूनी से परे कुछ पहलू: धारा 370 और "विकास"?

ऊपर दिये गये तर्क क़ानून और संवैधानिक औचित्य पर आधारित हैं. कुछ लोग जो क़ानून और वैधता की ज़रूरत को नहीं समझते, उन्होंने मुझसे वजहें मांगी जिनमें प्रस्तावित संशोधनों से होने वाले कानूनी या कोई अन्य नुकसान शामिल नहीं हैं. यह उनकी समझ और लाभ के लिए है. कानूनी समझ के बिना शून्य में बात करना लोकतांत्रिक समझ को नज़रअंदाज़ करना है. लेकिन मैं समझता हूं कि आप कहां से आ रहे हैं इसलिए मैं इस सवाल का जवाब देने की कोशिश करुंगा.

धारा 370 का हटाया जाना क्या "विकास" लायेगा, इस सवाल के लिए कोई अध्ययन, योजना या तथ्य नहीं है. तो यह चर्चा पूरी तरह से काल्पनिक है. अगर धारा 370 का हटाया जाना ही विकास के लिए पर्याप्त आधार था, तो "एकीकृत" राज्यों में गरीबी और कुपोषण के वर्तमान स्तर देखने को नही मिलते. बहरहाल, धारा 370 ने कभी कोई निवेश नहीं रोका, क्योंकि कॉर्पोरेट्स बड़ी परियोजनाओं के लिए 99 साल के लीज़ एग्रीमेंट में प्रवेश करते रहे हैं, तो इस विकास के तर्क में कोई दम नहीं है. हिमाचल प्रदेश और अन्य राज्यों में भूमि की खरीद पर इसी तरह के प्रतिबंध हैं, फिर भी यह वहां चर्चा का विषय नहीं है. क्या ये क्षेत्र "विकास" के इस मॉडल के लायक नहीं हैं?

अब नुक़सान के सवाल पर आते हैं- प्रस्तावित संशोधन कई तरह से सुरक्षाओं पर हमला करते हैं, जो जम्मू और कश्मीर के लोगों के हितों को सीधे नुकसान पहुंचायेगा. उदाहरण के लिए, अगर केंद्र राज्य सरकार की "सहमति" के बिना प्राकृतिक संसाधनों को एकतरफ़ा नियंत्रित करती है, तो उन संसाधनों पर लोगों के अधिकारों के लिए कोई सुरक्षा नहीं बचीरहेगी. यह एक ऐसी स्थिति है जिसे कश्मीरी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं. इसे बेहतर ढंग से समझने के लिए आपको कश्मीर में भूमि-सुधार के बारे में भी समझना होगा. यह उस सामाजिक और आर्थिक विकास के स्तर को समझने के लिए ज़रूरी है, जिसे कश्मीरी समाज ने राज्य के संपत्ति के नव-उदारवादी अधिग्रहण की अस्वीकृति में, सफलतापूर्वक लाया. लोगों की आवश्यकताओं के अनुसार सुधार केवल इस संरचना द्वारा संभव किये गये हैं और ये सुधार भारतीय संविधान के तहत संभव नहीं होंगे. एक क्षेत्र को केवल "निवेश" या "निजी क्षेत्र" के लिए खोलने से (खासकर, वहां के लोगों की इच्छाओं के ख़िलाफ़) विकास नहीं होता है. असल में यह भारत द्वारा अपनाये गये आर्थिक मॉडल की विफलता है. यह समझाने के लिए मैं कुछ आंकड़े देता हूं: जम्मू और कश्मीर में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोग वहां की आबादी के 10 फीसदी हैं. यह आंकड़ा भारत के अन्य राज्यों में गरीबी के सबसे कम प्रतिशतों में से एक है. महाराष्ट्र में

17% आबादी गरीबी रेखा के नीचे रहती है. यहां तक कि तथाकथित "वाइब्रेंट" गुजरात में भी 16.8% आबादी का हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे है. पश्चिम बंगाल और कर्नाटक में 20% से अधिक आबादी गरीबी रेखा से नीचे रहती है. उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में 30% आबादी गरीबी रेखा से नीचे रहती है. हमारी प्रति व्यक्ति आय ज़्यादा नहीं है, लेकिन हमारी "विकास" की परिभाषा भारत के मौजूदा मॉडल से अलग है. बल्कि मैं यह तर्क दूंगा कि कश्मीर द्वारा लागू किये गये सुधार भारतीयों के लिए एक बेहतरीन उदाहरण है. हम एक ऐसी अर्थव्यवस्था के निर्माण को अस्वीकार करते हैं, जो मात्र कुछ लोगों के हाथों में भारी मात्रा में धन केंद्रित करती है, और वह भी इस तथ्य को नज़रअंदाज़ करके कि हमारे आसपास लोग हैं जो फ्लाई-ओवर के नीचे अपना पूरा जीवन बिता देते हैं. हमें ऐसे फ्लाई-ओवरों की ज़रूरत नहीं है. हम उस दिन का इंतजार करते हैं कि जब हिंदुस्तान के लोग भी अपनी प्राथमिकताओं का पुनर्मूल्यांकन करें.

मैंने पहली बार बेघर लोगों को, जो सड़क पर अपनी जिंदगी जी रहे थे, तब देखा जब मैं पहली बार दिल्ली आया. मेरे लिए यह एक चौंकाने वाली बात थी कि हिंदुस्तान के लोग एक इंसान को सड़क पर अपना जीवन बिताते-खाते, पीते, बच्चे पैदा करते, उन्हें बड़ा करते, सबकुछ सड़क पर करते देखकर इतने उदासीन और अप्रभावित थे. मैंने अपने जीवन में इस तरह की नितांत ग़रीबी कभी नहीं देखी थी. मुझे खुद को संभालने में और इस वास्तविकता को स्वीकार करने में कुछ वक़्त लगा था. यह समझने के लिए कि एक युवा कश्मीरी लड़के को यह चौंकाने वाली बात क्यों लगी, यह आंकड़ा देखें- ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा आयोजित सामाजिक और जाति संगणना 2011 के अनुसार, कश्मीर में ऐसे परिवारों की संख्या जिनके पास घर नहीं है, ग्रामीण क्षेत्रों में 2,318 और शहरी क्षेत्रों में 263 है. इसकी संजीदगी को समझें- मात्र 263. आप शायद मुंबई जैसे शहर में कहीं भी, किसी भी दिशा में 5 किमी की यात्रा भी नहीं कर सकते, बगैर कश्मीर के पूरे शहरी क्षेत्र से अधिक बेघर लोगों को देखे बिना. भारत में अनुमानित 18 लाख लोग बेघर हैं, जिनमें से 52% शहरी क्षेत्रों में हैं.

दूसरी बात, 70 साल की उथल-पुथल के बावजूद, हमारे पास आर्थिक समानता की भावना है, क्योंकि हमारी अर्थव्यवस्था भारत के विपरीत एक मूल-निवासी मॉडल पर बनी है. यहां तक कि हमारे समाज के उन तबक़ों को भी जो हाशिये के हैं जिनमें, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति भी शामिल हैं, राज्य द्वारा भूमि आवंटित की गयी थी, जो कि भारत के ठीक विपरीत है. यह सब 1950 के दशक में किया गया था, जो कि एकमात्र ऐसा समय था जब हम वास्तव में स्वायत्त थे. नव-उदारवादी मॉडल में बदलने के लिए हमारी आज़ादी को छीन लेना कश्मीर के लिए कोई समाधान नहीं है. यह पूरी दुनिया के लिए भी कोई समाधान नहीं है.

तीसरी बात, लोगों को विश्वास में लिए बिना ऐसा संशोधन केवल ध्रुवीकरण कर सकता है जो किसी भी तरह के बसाव को बहुत मुश्किल बनाता है. (बसने वाले) लोग शून्य में नहीं रह सकते. यह कदम भारत को जिस रास्ते पर तेज़ी से ढकेलेगा, वह सेना से संरक्षित बस्तियों का

निर्माण है. दुनिया भर में ऐसे उदाहरण हैं कि कैसे इस तरह की सैन्य बस्तियां विपत्ति का ज़रिया हैं.

पैसे के लिए बाज़ारीकरण राज्य की संप्रभुता और ग़ैर-बराबरी से भरे निर्णय लेने वाली शक्तियों की लागत पर आता है. पैसा तभी आता है जब उसके वापस बाहर जाने का आश्वासन हो. यह एकाधिकार स्थानीय व्यवसायों को बर्बाद कर देता है और हम कश्मीरी इसे हम पर थोपने की सहमति नहीं देते हैं.

आपको यह समझना होगा कि रिहाइश, खेती और विकास के लिए क्या उपलब्ध है. भारत अविभाजित जम्मू और कश्मीर के कुल क्षेत्र का लगभग 55% नियंत्रित करता है. इसमें से एक बड़ा क्षेत्र पहाड़, आर्द्र भूमि (व्हेटलैंड) और वन हैं जो रहने या खेती योग्य नही हैं और जिसमें से बहुत कुछ सशस्त्र बलों के कब्ज़े में है. पिछले साल, विपक्ष के सैन्य और अर्धसैनिक बलों के कब्ज़े वाली भूमि की राशि, इससे जुड़े कुछ मामलों में जो कि अनधिकृत हैं, के सवाल पर, विधानसभा को दिये गये लिखित जवाब में महबूबा मुफ्ती ने कहा कि जम्मू में 51,116 कनाल (लगभग 6390 एकड़) और कश्मीर व लद्दाख में 3,79,817 कनाल (लगभग 47477 एकड़) भूमि सेना और अन्य सुरक्षा बलों के अनधिकृत कब्जे में है.

मौजूदा वन भूमि की बात करें, तो इन क्षेत्रों को निजी निवेश के लिए खोलना कश्मीर के लोगों के लिए बिल्कुल हानिकारक है. पर्यावरण के हिसाब से हम एक संवेदनशील क्षेत्र में रहते हैं. भारत और पाकिस्तान द्वारा बड़े पैमाने पर सैन्य लामबंदी के कारण ग्लेशियर पहले से ही पिघल रहे हैं. हमने पहले ही कश्मीर में मानव रचित आपदाओं और जलवायु परिवर्तन के कारण बाढ़ का अनुभव झेला है. हम "विकास" के लिए वनों की कटाई की अनुमति नहीं दे सकते. यह हमारे अस्तित्व के लिए, हमारे घरों के लिए ख़तरा है और हमें प्राकृतिक आपदाओं के प्रति असुरक्षित करता है.

यह कहना कि हमें इस संशोधन की अवैधता और नैतिक भ्रष्टाचार को नज़रअंदाज़ कर देना चाहिए, विनम्रता से कहा जाएये तो काफ़ी मूर्खतापूर्ण बात है. यह ऐसा कहने के समान है कि अफ़्रीकी-अमेरिकियों को अवैध दास-व्यापार परंपरा से लाभ हुआ, क्योंकि अब वे अफ़्रीका में रहने के बजाय अमेरिकी अर्थव्यवस्था में भाग ले रहे हैं, गोया रेलवे, सड़क, शासन की व्यवस्था आदि लाभों के लिए उपनिवेश से जुड़े ग़ैरक़ानूनी कार्यों को अनदेखा किया जा सकता है. व्यक्तिगत तौर पर हमारा राज्य के साथ एक सामाजिक अनुबंध (सोशियल कॉन्ट्रेक्ट) होता है, जो हमें नियंत्रित करता है. यदि राज्य इस सामाजिक अनुबंध का अवैध तरीके से उल्लंघन करता है तो इससे कानूनी शासन टूट जाता है. यह ऐसी स्थिति नहीं है जिसे किसी आर्थिक पैकेज के बदले में अनदेखा किया जा सकता है.

(कश्मीर ख़बर से साभार)

'मिलिट्री-इंडस्ट्रियल कॉम्प्लेक्स' के आलोक में जम्मू-कश्मीर का पुनर्गठन

सूर्यकांत सिंह

भारतीय अर्थव्यवस्था जहां पूरी तरह से वैश्विक बाज़ारों से जुड़ चुकी है, वहीं विकास की कमी की वजह से अब भी हम अपनी अन्य व्यवस्थाओं को वैश्विक परिदृश्य में नहीं देख पाते। हमने अपनी अर्थव्यवस्था में ट्रांस-नेशनल कॉरपोरेशंस की बढ़ती पैठ को नब्बे के दशक से ही देखा है। उस दौर से लेकर अब तक, लगभग तीस वर्षों में, उन कार्पोरेशंस ने अपनी जडें व्यवस्था में बहुत गहरी कर ली हैं। इन कारपोरेशंस के ग्राहक जो आम लोग हैं, ज्यादातर निम्न आय वर्ग से हैं जो अपनी दैनिक समस्याओं के कारण शायद ही कभी विश्व स्तर पर सोच पाते हैं। इसका एक कारण मीडिया द्वारा वैश्विक घटनाओं के बारे में जानकारी का न दिखाना भी है।

परिणामस्वरूप, हम बड़ी वैश्विक घटनाओं पर असर करने वाली अधिकांश गतिविधियों से अनभिज्ञ हैं। पूरी तस्वीर के अभाव में, हमारे पास मीडिया द्वारा बनाई गई तस्वीर पर भरोसा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह जाता। भारतीय मीडिया की नैतिकता और मूल्यों के पतन पर चर्चा इतने लंबे समय से चल रही है कि जो कुछ कहा जा सकता था, वह पहले ही कहा जा चुका है। शायद इसमें जोड़ने लायक एकमात्र बात यह हो सकती है कि मीडिया आउटलेट्स की बढ़ती हुई संख्या से अक्सर यह तथ्य छिप जाता है कि सभी प्रमुख बाजारों में चंद खिलाड़ियों का पूर्ण प्रभुत्व है। इसमें क्षेत्रीय चैनल भी कोई अपवाद नहीं हैं। दूसरे शब्दों में मीडिया के मालिकाने का स्वरूप अब मोनोपोलिस्ट से ओलिगोपोलिस्ट हो चुका है।

मीडिया

प्रचार पर सरकारी खर्च में वृद्धि के साथ ही टीवी एंकर सरकारी नीतियों के पैरोकारों में बदल गए हैं जो सरकार के प्रत्येक कार्य को एक राष्ट्रवादी-धार्मिक स्पर्श के साथ वैध बना देना चाहते हैं। पिछले वर्षों में, हमने समाचारों को प्रसारित करने के अपने नियमित काम को लेकर भी सरकार द्वारा प्रमुख पत्रकारों और यहां तक कि पूरे चैनलों का मुंह बंद करते देखा है। निस्संदेह इसने मीडिया घरानों के लिए आर्थिक लाभ की मौजूदा प्रणाली पर एक और तत्व, "भय" को लाद दिया है। स्वाभाविक रूप से, हम मीडिया को हर समय प्रतिष्ठानों और आधिकारिक कथाओं के पक्ष में देखते हैं।

जिस समय भारत आम चुनावों की ओर बढ़ रहा था और अर्थव्यवस्था पहले से ही सुस्त होती दिख रही थी, उस वक़्त वैश्विक एजेंसियों द्वारा (भारत जिनमें से कुछ का कर्जदार है) भारत की रैंकिंग में सुधार करने की खबर और 'विकास' के लिए पीएम को सियोल पीस पुरस्कार दिए जाने की खबर (भारत में एक दक्षिण-कोरियाई कारखाने के उद्घाटन के बाद) ने सरकार की एक

प्रगतिशील छवि पेश की। इससे भाजपा के चुनाव अभियान पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ा। चाहे दिल्ली में नेशनल वॉर मेमोरियल का उद्घाटन हो या एंटी-सैटेलाइट मिसाइल परीक्षण, हर खबर ने लोगों के दिमाग को चकरा दिया और आम चुनाव 2019 के लिए भाजपा के राष्ट्रवादी आख्यान को आकार दिया।

गैरजिम्मेदाराना व्यवहार, भड़काऊ भाषा और भावनात्मक शोषण ने धीरे-धीरे राष्ट्र के लोगों को एक "प्रोग्रामेबल रोबोट" बना दिया है। इसमें व्यक्तिगत जीवन के असंतोष को जोड़ दिया जाए तो इससे एक ऐसा व्यक्तित्व पनपता है जिसमें कोई विवेक नहीं है। कच्ची जानकारियों की श्रृंखला से उपजा उन्माद एजेंडा के अनुरूप उपयुक्त शबदावली में अनूदित होकर सोशल मीडिया से लेकर नुक्कड़ चर्चाओं तक पहुंच रहा है। यदि कच्ची जानकारी को मनोविश्लेषण के सिद्धांतों के साथ प्रयोग किया जाए, तो व्यक्ति जानकारी को सरल रूपों में तोड़ सकता है और असरदार शब्दों का चुनाव कर सकता है। जानकारी का उपभोग करने वाले समूहों के आधार पर, क्षेत्रीय, सांप्रदायिक, जातीय, भाषाई या किसी अन्य वांछित वर्गीकरण के संदेश तैयार किए जा सकते हैं। सोशल मीडिया ने सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग को इन समूहों को माइक्रो-टारगेट करने और एक हीं समय पर सूचना देने की शक्ति दे दी है। यह सब अगर केंद्रीय रूप से नियंत्रित किया जाए, जैसा कि होता दिख रहा है, तो इससे "किसी भी" परिभाषित लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है। इससे मीडिया प्रणाली बड़े पैमाने पर शोषण का एक हथियार बन जाती है! जैसा कि पहले के अध्यायों में भी मैंने बताया है, "मॉब लिंचिंग" इस बात का एक उदाहरण है कि इस तरह के तंत्र का उपयोग कैसे किया जा सकता है।

जन-विरोधी कानून

मोदी सरकार संविधान में संशोधन करने की होड़ में है। पूर्ण बहुमत और वर्तमान गति के साथ, हम जल्द ही पूरी तरह से पुनर्लिखित संविधान का एक संस्करण देख सकते हैं। अपने पहले सत्र में 17वीं लोकसभा ने अधिकांश दिनों में देर शाम तक काम किया है। पूरी प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि संसदीय समितियां बिल की खूबियों और अवगुणों का आकलन करती हैं, पर सूचीबद्ध बिलों को पारित करने की हड़बड़ी में इस पहलू को लगातार दरकिनार किया जा रहा है जो खतरनाक बात है। एनडीए-2 के समय से ही बहुत कम बिलों को संसदीय समितियों के पास समीक्षा के लिए भेजा जा रहा है। जहां 14वीं और 15वीं लोकसभा (2004 से 2014 तक) ने 60 प्रतिशत बिलों की समीक्षा की थी वहीं 16वीं लोकसभा ने संसद में पारित विधेयकों की कुल संख्या के केवल 26 प्रतिशत की ही समीक्षा की है।

हाल में किए गए संशोधनों की प्रकृति सुधार की कम, अत्याचार की ज़्यादा है। इन बिलों को सीधे तौर पर जन-विरोधी करार दिया जा सकता है। मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारों का संरक्षण) विधेयक, 2019 का उपयोग सीधे तौर पर मुस्लिम पुरुषों को लक्षित करने के लिए

किया जा सकता है। खुद मुस्लिम समुदाय की महिलाएं इस कानून की अतार्किकता के खिलाफ बोल रही हैं। यूएपीए (संशोधन) विधेयक, 2019 और एनएसए (संशोधन) विधेयक, 2019 सुरक्षा बलों के हाथ में एकमुश्त हथियार है। सुरक्षा बलों की नैतिक अखंडता कई मौकों पर प्रमाणित रूप से कमज़ोर पाई गई है। इसके अलावा, नौकरशाही और राजनीति के अंतरंग सम्बंधों की वजह को भी देखें, तो यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि इन कानूनों का किस हद तक दुरुपयोग किया जाएगा। इन कानूनों का आधार राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दे से जुड़ा है, जिससे शासकों के लिए इनका विरोध रोकना आसान है और ये उन्हें एक राष्ट्रवादी भूमिका में पेश करता है। दोहरे उद्देश्य के साथ-साथ ये कानून उनके लिए भरपूर सुर्खियां भी बटोरते हैं।

वित्त वर्ष 2019-20 की पहली तिमाही की समाप्ति के साथ ही उभरते आर्थिक संकट की खबरें आने लगीं। आइटी सेवा उद्योग को छोड़कर सभी उद्योगों ने राजस्व में भारी नुकसान दर्ज किया है। एनपीए में वृद्धि जारी है, एफआइआइ लगातार पलायन कर रहे हैं, राजकोषीय घाटा और विदेशी ऋण बढ़ रहा है, रुपया कमज़ोर हो रहा है, कच्चे तेल की कीमतें बढ रही हैं और शेयर बाजार ढलान पर हैं। इस समस्या से निपटना तो दूर, सरकार इस तथ्य को स्वीकार करने से भी कतरा रही है। दर्जन भर प्रमुख उद्योगपतियों के सार्वजनिक रूप से बोलने के बाद आर्थिक संकट के बारे में खबरें तेजी से बढ़ रही थीं, लेकिन इससे पहले कि यह एक आम धारणा के रूप में विकसित हो सके, हम अचानक राष्ट्रवादी हठधर्मिता के पुनरुत्थान के गवाह बने। जम्मू और कश्मीर में संकट का स्तर बढ़ चुका था!

दुष्ट सैन्य उद्योग

स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट (सिपरी) की फैक्टशीट से पता चलता है कि भारत 2017 के हथियारों के आयातकों की सूची में विश्व में नंबर एक है और 2018 में दूसरे स्थान पर रहा। यह जानकारी बहुत अस्थिर करने वाली है, लेकिन इसमें और कुछ जोड़ा जाना ज़रूरी है। पीएम के रूप में अपने पहले कार्यकाल से ही, नरेंद्र मोदी ने भारत में सैन्य औद्योगिक परिसर के विकास का सक्रिय समर्थन किया है। भारत के तत्कालीन रक्षा मंत्री अरुण जेटली ने रक्षा विनिर्माण में निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए स्ट्रैटेजिक पार्टनरशिप (एसपी) मोड की जोरदार वकालत की। नतीजतन, कई भारतीय निजी कंपनियों ने अपने व्यवसायों को उपभोक्ता वस्तुओं से युद्ध मशीनों की ओर डायवर्ट कर दिया है जिसके कुछ उदाहरण हैं: टाटा एडवांस्ड सिस्टम, रिलायंस डिफेंस और महिंद्रा।

ये एक खतरनाक मिलिट्री-इंडस्ट्रियल कॉम्प्लेक्स के संकेत हैं जो भारतीय अर्थव्यवस्था में अपनी जड़ें जमा रहा है। मिलिट्री-इंडस्ट्रियल कॉम्प्लेक्स (एमआईसी) एक राष्ट्र की सेना और रक्षा उद्योग के बीच एक अनौपचारिक गठबंधन है। इन्हें एक निहित स्वार्थ की वजह से एक साथ देखा जाता है जो सार्वजनिक नीति को बुरी तरह प्रभावित करता है। सरकार और रक्षा निगमों के

बीच इस संबंध के पीछे एक कारक यह है कि इससे दोनों पक्ष लाभान्वित होते हैं। एक पक्ष को युद्ध के लिए हथियार मिल जाता है और दूसरा आपूर्ति करने के लिए भुगतान प्राप्त करता है। इस शब्द का उपयोग अकसर संयुक्त राज्य अमेरिका की सेना के पीछे की प्रणाली के संदर्भ में किया जाता है, जहां यह रक्षा ठेकेदारों, पेंटागन और राजनीतिज्ञों के बीच घनिष्ठ संबंधों के कारण सबसे अधिक प्रचलित है।

यह स्पष्ट रूप से कहा जाना चाहिए कि एक निजी सैन्य उद्योग नाटकीय रूप से नीति-स्तर की प्राथमिकताओं को बदल देता है। इस पहलू के बिना भी भारत का रक्षा-खर्च खतरनाक रूप से ज़्यादा है। हमारी अर्थव्यवस्था वर्तमान स्थिति में संसाधनों की कमी से जूझ रही है। इस संकट के समय में जन-प्रतिनिधियों और नीति निर्माताओं द्वारा उपलब्ध संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की आवश्यकता है। युद्ध के हथियारों के निर्माण और खरीद पर सरकार द्वारा किया गया अत्यधिक व्यय वर्तमान संदर्भ के लिए बेतुका और विरोधाभासी है (2017-18 में रक्षा मंत्रालय को बजटीय आवंटन 3,59,854 करोड़ रुपये था)।

अकसर इस तरह की चर्चा का केंद्र अमेरिका होता है क्योंकि वह यह इस निजी सैन्य उद्योग के खतरनाक परिणामों का प्रमुख उदाहरण भी है। मिलिट्री-इंडस्ट्रियल कॉम्प्लेक्स के प्रभाव के कारण अमेरिका एक के बाद एक, पूरे विश्व में युद्ध लड़ रहा है। इस उद्योग का केवल एक लक्ष्य है कि उनके विध्वंसक उतपादों के लिए हर समय खरीदार बने रहें। वे केवल यही सुनिश्चित करने के लिए युद्ध करते हैं। उन्हें विश्व भर में आतंकवाद से लड़ने के नाम पर "मानव उत्पीड़न" और "राष्ट्रों के विनाश" को वैध बनाने के लिए जाना जाता है। अब इसमें अमेरिका के इतने निहित स्वार्थ हैं कि इस उद्योग को बंद करने का विकल्प ही नहीं है। यह उद्योग अब पूरी तरह अमेरिकी अर्थव्यवस्था और समाज के ध्वस्त होने के बाद ही ध्वस्त होगा। जाहिर है ऐसी स्थिति में मानव अधिकारों और मानव जीवन के लिए कोई सम्मान शेष नहीं रह जाता।

निष्कर्ष

यदि हम भ्रष्ट मीडिया, दमनकारी कानूनों और सैन्य-औद्योगिक तत्वों को जोड़ते हैं, तो हमें एक स्पष्ट तस्वीर मिलती है कि हमारी सरकारें क्या करने में सक्षम हैं। आतंकवाद एक वैश्विक खतरे के रूप में विकसित हुआ है जो ज्यादातर राज्य द्वारा प्रायोजित उत्पीड़न के कारण पनपता है लेकिन पक्षपाती मीडिया अकसर पीड़ितों को हीं अपराधियों के रूप में चित्रित करता है (जैसा कि जम्मू और कश्मीर के साथ अभी किया जा रहा है)। डर के इस तत्व पर अंकुश लगाने का दिखावा करते हुए दुनिया भर में दक्षिणपंथी सरकारों ने ऐसे कानूनों का निर्माण किया है जो लोगों से उनके अधिकारों को छीनने का इरादा रखते हैं, जिससे उन्हें और अधिक असुरक्षित किया जा सके। विकसित राष्ट्रों के पास राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियों के साथ एक पूर्ण विकसित सैन्य उद्योग है। उनके पास अन्य विकासशील देशों के सिस्टम में स्थापित लॉबिस्ट भी हैं। ये

लॉबिस्ट किसी भी विकासशील देश के सिस्टम में समन्वय स्थापित कर वहां "युद्ध की स्थितियों को बनाने" में सक्षम हैं। साथ ही ये प्रमुख पदों पर बैठे लोगों को निजी आर्थिक लाभ दे कर उन्हीं सरकारों को हथियार भी बेचते हैं।

आम भारतीय मूल मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से आम अमेरिकी से बहुत अलग नहीं हैं। इसलिए उनकी राय को आकार देने के लिए एक ही रणनीति का उपयोग किया जा सकता है। उपरोक्त कार्यप्रणाली का उपयोग अमेरिका द्वारा कई बार युद्ध छेड़ने के लिए किया गया है। याद करें कि अमेरिका ने अफगानिस्तान के खिलाफ युद्ध छेड़ने के लिए 9/11 का उपयोग कैसे किया था, जबकी अब 9/11 राज्य प्रायोजित फाल्स-फ्लैग ऑपरेशन का सबसे व्यापक उदाहरण माना जाता है। कमोबेश वैसे ही जैव-रासायनिक हथियार रखने के आरोप में इराक से युद्ध छेडा गया। बाद में वहां क्या मिला यह सभी जानते हैं। दुनिया आतंकवाद की "सीडिंग" के लिए अमेरिका को दोषी ठहराती है और हमारा दुर्भाग्य है कि आज हम भारत में इसकी सम्भावना देख रहे हैं।

मानवता इस तथ्य की गवाह है कि शक्ति भ्रष्ट करती है।

जिस तरह से जम्मू-कश्मीर के पुनर्गठन के पूरे अध्याय को सामने लाया गया है, वह अपने आप में शर्मनाक है। यह अध्याय पाकिस्तान द्वारा संघर्ष विराम उल्लंघन की खबरों से शुरू होता है। 31 जुलाई, 2019 को मोर्टार और गोलाबारी से पाकिस्तान की तरफ से दो मौतें हुईं और एक भारतीय सैनिक शहीद हो गया। इसके बाद 2 अगस्त को आइईडी विस्फोट की खबर आई जिसमें सेना का एक वाहन क्षतिग्रस्त कर दिया गया। सेना ने उसके बाद के तलाशी अभियान में अमरनाथ यात्रा मार्ग पर हथियारों का जखीरा पाया। बाद में, हमने सरकार को जम्मू-कश्मीर में सशस्त्र बलों की 250 कंपनियों को तैनात करने के बारे में सुना। रुक-रुक कर आ रही सूचनाओं ने जल्द ही यह स्पष्ट कर दिया कि सरकार कुछ "विशाल" योजना बना रही थी। गृहमंत्री अमित शाह द्वारा अनुच्छेद 370 के प्रावधानों को रद्द करने का प्रस्ताव पेश किए जाने के समय सभी तरह की अफवाहें पहले से ही चल रही थीं।

पहले से ही सैन्यीकृत राज्य में अनुच्छेद 370 के पुनर्गठन और अधिक से अधिक सैनिकों की तैनाती के साथ यह साफ है कि भारत एक औपनिवेशिक हिंदू परियोजना के रूप में बढ चला है। यह हर एक मोर्चे पर स्पष्ट है, फिर चाहे वह जम्मू-कश्मीर हो, असम हो या बस्तर। इज़रायल की तर्ज़ पर अब यह सरकार तय करती है कि कब और कैसे किस जमीन पर कब्जा करना है, कब सैन्यीकरण करना है और कितना करना है, कब कानून में संशोधन करना है, कब अलग-अलग कॉलनियों का निर्माण करना है, किसे नजरबंदी केंद्रों में रखना है और कौन सी जमीन का अपने निवासियों की सहमति के बिना विभाजन करना है।

नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर रोक, संचार का बंद किया जाना, नेताओं की गिरफ्तारी, यह सब भारत के अन्य हिस्सों में भी हो सकता है। सरकार न केवल अपनी बल्कि एक विशेष

विचारधारा की इच्छा को लागू करने के लिए बल का उपयोग कर रही है। यह मानसिकता आगे चल कर अवाम के वैध विरोध और या अन्य किसी भी तरह के शांतिपूर्ण असंतोष को शांत करने के लिए भी बल प्रयोग कर सकती है। अगर सरकार जम्मू और कश्मीर के लोगों के लिए बदलाव ला रही है, तो जम्मू-कश्मीर के लोकतंत्र-समर्थक नेताओं को गिरफ्तार करने का क्या कारण है? संचार के सभी रूपों पर कर्फ्यू और प्रतिबंध क्यों? लाभार्थियों को अंधेरे में रखने सरकार किस तरह का लाभ देने की सोच रही है?

इस आदेश के बाद राज्य के पुनर्गठन की राह अब आसान हो गई है, जो संघ की लंबे समय से इच्छा है लेकिन बुनियादी सवाल अब भी खड़ा है। कश्मीर के विलय को कुछ तकनीकी कमियों के कारण 'विशेष' माना जाता है, क्या सिर्फ राष्ट्रपति के एक आदेश से उन सभी कमियों को दूर किया जा सकेगा? इस आदेश से अनुच्छेद 35ए को समाप्त कर दिया जाएगा, लेकिन कश्मीर द्वारा प्राप्त कई अन्य विशेषाधिकार अब भी जारी रहेंगे। पुनर्गठन का मुद्दा एक न्यायिक और संवैधानिक समीक्षा के माध्यम से गुज़रे बिना एक तानाशाही निर्णय ही रहेगा, जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत के पक्ष को कमजोर करेगा।

कश्मीर मुद्दा भारत और पाकिस्तान के बीच एक द्विपक्षीय समस्या है। जहां भारत ने बल प्रयोग करते हुए कश्मीर के लोगों पर जुल्म करना जारी रखा है, वहीं पाकिस्तान ने कश्मीरी लोगों के समर्थन में हमेशा अपने हाथ आगे बढ़ाए हैं। निस्संदेह, अलगाववादियों को इस निर्णय और इसके कार्यान्वयन के तरीकों से पर्याप्त सामग्री मिलेगी जिसका इस्तेमाल कर वे एक और पीढ़ी को हिंसा की आग में झोंक सकते है।

घाटी में अलगाववाद की आग आज अपने चरम पर है। कश्मीर के आम युवा भारत के साथ अपनी पहचान नहीं रखते हैं, बल्कि उनमें से ज्यादातर में अब अलगाव की भावना है। उनके लिए यह भारतीय सेना, जिन्होंने उनकी स्वतंत्रता को कुचल दिया, की ताकत के आगे सर झुकाना एक सच्चाई है। इन स्थितियों के साथ इस निर्णय के आगामी गंभीर परिणामों का अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है।

कश्मीर में सेना की तैनाती कब तक कायम रह सकती है? अभी टीवी, इंटरनेट या मोबाइल संचार नहीं हैं, लेकिन उन्हें कभी न कभी शुरू करना होगा। एक बार बंदूकें गिर जाएंगी और प्रहरी हटा दिए जाएंगे, तो इसकी पूरी सम्भावना है कि अलगाववादी तख्तापलट शुरू करने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। इस फैसले से भले हीं कश्मीर को जीता जा सकता है लेकिन कश्मीरियों को नहीं। इसलिए इस निर्णय के साहसिक या दुस्साहसी होने का दावा करने से पहले, हमें सरकार के अप्रत्यक्ष उद्देश्यों और इसके दीर्घकालिक परिणामों का मूल्यांकन करना चाहिए।

यहां एक बड़ी संभावना है कि अनुच्छेद 370 के अचानक खत्म होने का पूरा प्रकरण "संघर्ष निर्माण" के उद्देश्य से किया गया है। इससे न केवल लंबे समय तक सैनिकों की बड़े पैमाने

पर तैनाती के अवसर पैदा होंगे, बल्कि फिलिस्तीन या सीरिया जैसे विस्तारित संघर्ष की संभावनाएं भी रहेंगी। घटनाओं की वर्तमान स्थिति से एक संभावना यह भी निकलती है कि भारत पीओके के भारत में विलय या कम से कम पाकिस्तान को युद्ध के लिए उकसाने का प्रयास तो कर ही सकता है। हमें सतर्क रहना चाहिए क्योंकि किसी भी तरह की बुराई सैन्य उद्योग के लिए बहुत बड़ी नहीं है। जम्मू-कश्मीर में किसी मामूली चरमपंथी विकास या आतंकी गतिविधि को भी सरकार द्वारा बहाने के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा। बिना राज्य के परामर्श के जम्मू और कश्मीर का पुनर्गठन संघर्ष के नए दौर की शुरुआत है।

विशेष लेख

आर्थिक मंदी का सायाः बैंक विलय और यील्ड कर्व

सूर्यकांत सिंह

अब यह बात स्थापित हो चुकी है कि भारत मंदी की चपेट में आ रहा है। तमाम उद्योगपतियों से लेकर बड़े औद्योगिक घरानों तक ने बयान जारी कर इस विषय पर सरकार का ध्यान आकृष्ट करने की असफल कोशिश की है। टेक्सटाइल और चाय उद्योग ने मंदी की खबरें न दिखाए जाने से तंग आ कर विज्ञापन ही दे डाला। अर्थशास्त्री रघुराम राजन ने भी इस विषय को मुखर तौर से उठाया है। याद रहे कि राजन ही थे जिन्होंने 2007-08 की आर्थिक मंदी से साल भर पहले ही अमरीकी बैंकरों को चेता दिया था। मंदी से औद्योगिक उत्पादन लगातार गिर रहा है और नौकरियां जा रही हैं। बेरोज़गार हो चुके मज़दूर पैसे की तंगी से व्याकुल हैं पर सरकार पर कोई असर होता नहीं दिख रहा।

पिछले माह वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही का अंत हुआ और इस माह की शुरुआत से ही औद्योगिक इकाइयों के आंकड़े आने लगे। चूंकि मंदी (रिसेशन) के आंकड़े इतने व्यापक रूप से मौजूद हैं इसलिए हर एक का विस्तृत वर्णन करने से खास लाभ नहीं, फिर भी परिप्रेक्ष्य स्थापित करने के उद्देश्य से बड़े आंकड़ों का जिक्र कर देना उचित होगा।

इसी माह आयी राजस्व विभाग की रिपोर्ट के मुताबिक राज्यों के राजस्व में भारी गिरावट दर्ज हुई है, जो कई राज्यों के लिए 20 फीसदी तक है। सबसे बडी विसंगति यह है कि जिन राज्यों में औद्योगिक कार्य सबसे कम होते हैं, उन्हीं ने सबसे ज़्यादा कर्ज़ राजकोष में जमा किया है। इनमें बिहार, झारखंड, असम, उत्तराखंड प्रमुख हैं, जबकि दक्षिण भारत के कमोबेश विकसित राज्य सबसे कम राजस्व की उगाही कर पाये हैं।

शेयर बाज़ार में लिस्टेड सभी कम्पनियों ने अपने परिणाम सार्वजनिक कर दिए हैं। ये परिणाम भी रिसेशन की ओर ही इशारा कर रहे हैं। शेयर बाज़ार में विदेशी संस्थागत निवेशकों की हिस्सेदारी सबसे अधिक है और उनके पास बेहतर अनुसंधान भी उपलब्ध हैं। डेटा से साफ हो चला है कि विदेशी निवेशक भारतीय शेयर बाज़ार से भारी मात्रा में पैसे निकाल रहे हैं। शेयर बाज़ार रिसेशन से तुरंत पहले तक नहीं गिरता पर पिछली तिमाही में भारतीय बाजारों ने लगातार गिरावट दर्ज की है और कई लाख करोड़ की पूंजी डूब चुकी है। मिड कैप, स्माल कैप, मेटल, पावर, आयल-गैस, मैनुफैक्चरिंग, आटोमोबाइल, बैंक, एनबीएफसी समेत चौतरफा कमज़ोरी आयी है। केवल पिछ्ले एक साल को ही देखें तो में मार्केट कैप में आया बदलाव डरा देने वाला है।

रिसेशन (मंदी) किसी अर्थव्यवस्था में वह दौर होता है जब अर्थव्यवस्था के प्रमुख अंगों में आर्थिक क्रियाकलाप कम होने लगते हैं। यह दौर कुछ महीनों से लेकर वर्षों तक चल सकता है और इसके विस्तार के अनुरूप इसका असर जीडीपी, आय, रोज़गार, औद्योगिक उत्पादन और थोक-खुदरा बिक्री में प्रत्यक्ष दिखता है। इस दौर में अर्थव्यवस्था का बढ़ना बंद हो जाता है या वह सिकुड़ने लगती है। जीडीपी का लगातार दो तिमाही तक कम होना, बेरोज़गारी का बढ़ना और घर की कीमतों में गिरावट आना भी मंदी का संकेत है।

भारत की जीडीपी लगातार वित्त के जानकारों के लिए कौतूहल का विषय बनी हुई है। जीडीपी की गणना के आधार को मौजूदा सरकार ने बदल दिया था जिसके चलते यूपीए शासन के मुकाबले वह बेहतर दिखने लगी थी। उक्त विषय पर पूर्व वित्तीय सलाहकार द्वारा एक रिसर्च पेपर प्रकाशित किया गया है जिसमें उन्होंने सरकारी आंकड़ों का अध्ययन किया है। उनके पेपर के मुताबिक असल जीडीपी 4.5 फीसदी के आसपास है जिसे सरकार आंकड़ों के खेल से 7 फीसदी बता रही है।

अनुमानित फिस्कल डेफिसिट पहले ही चिंता का विषय था। वित्तीय विश्लेषक लगातार इस बात पर लिखते रहे हैं। देश का डेफिसिट पहले दो महीनो में ही सालाना अनुमान के आधे से ऊपर जा पहुंचा है इसलिए इस सरकारी अनुमान को और बढा दिया गया है। पर अब भी संदेह है कि वास्तविक फिस्कल डेफिसिट इस नये अनुमान से भी कहीं ज़्यादा होगा।

एनएसएसओ और सीएमआईई, दोनों के डेटा के मुताबिक बेरोज़गारी अब 45 वर्षों के उच्चतम स्तर पर है। बेरोज़गारों में पढे लिखे युवाओं की संख्या सबसे ज़्यादा है। देश में लगभग 4 करोड़ रजिस्टर्ड बेरोज़गार हैं।

मंदी के विस्तार के साथ 2018 में एक करोड़ लोगों की नौकरी चली गई है, साथ ही 2019 में अभी तक पचास लाख लोग अपनी नौकरियां गवां चुके हैं। यह आंकड़े प्रत्यक्ष रूप से गंवाई गई नौकरियों के हैं। अप्रत्यक्ष रूप से नुकसान कहीं ज़्यादा है।

तनख्वाह और दैनिक मज़दूरी में गिरावट दर्ज़ की गई है। इसमें भी अनस्किल्ड मज़दूरों पर सबसे ज़्यादा असर हुआ है।

एनपीए से लदे हुए सरकारी बैंकों ने- जो सबसे ज़्यादा लोगों को सेवाएं देते हैं- लोन देना कम कर दिया है। कुछ को तो आरबीआइ ने ही लोन न देने के आदेश दिए हैं।

बैलेंस आफ ट्रेड वह आंकड़ा होता है जो किसी देश के आयात और निर्यात के अनुपात को दिखलाता है। चूंकि औद्योगिक उत्पादन में भारी कमी आयी है इसलिए निर्यात भी घटा है जिसका प्रमाण घटते बैलेंस आफ ट्रेड में दिख रहा है।

भारत के उत्पादों की लागत लगातार बढ़ी है जिस वजह से देश अब भारत से आगे निकल चुके हैं। मिसाल के तौर पर टेक्सटाइल उद्योग में भारत का निर्यात इस वर्ष 30 फीसदी तक कम हुआ है, वहीं वियतनाम और बांग्लादेश जैसे कई छोटे देशों का निर्यात लगातार बढ़ रहा है।

सरकार के लाख दावों के बावजूद एफडीआई में लगातार आ रही गिरावट अब भी जारी है। ध्यान देने वाली बात यह है की एफडीआई के डेटा में वे लोन भी शामिल हैं जो विदेशी कम्पनियों ने देश के बैंकों से लिये थे।

इन सब आंकड़ों के साथ घरेलू खर्च भी कम हो रहा है। हालिया रिपोर्ट के मुताबिक भारतीय पुरुषों नें अंतःवस्त्र खरीदना कम कर दिया है। भले ही इस खबर को हंसी-मज़ाक में लिया गया हो पर सभी को पता है कि अंतःवस्त्र मूल आवश्यकताओं जैसे ही हैं। उनकी बिक्री में कमी आना गम्भीर वित्तीय संकट की ओर इशारा करता है। इससे यह भी साफ होता है की घरेलू खर्च में कमी आयी है और लोग सिर्फ बेहद ज़रूरी चीज़ों पर ही खर्च कर रहे हैं। यही हाल सरकारी खर्च का भी है। सरकारी खर्च और जीडीपी के अनुपात में भारी कमी आयी है।

रिसेशन की वजह से ज़्यादातर उद्योगों का काम ठप हो जाता है। अगर कोई औद्योगिक इकाई बंद न हो तो उस उपक्रम को संसाधनों का पुन: आवंटन करना पड़ता है । इसमें प्रोडक्शन कम करना, कर्मचारियों की छंटनी करना, तनख्वाह या इंसेंटिव न देना आदि प्रमुख हैं। व्यापारिक त्रुटियों का एक साथ महसूस किया जाना और उन्हें कैसे टाला जा सकता है, इस पर अर्थशास्त्रियों ने कई अलग-अलग सिद्धांतों की पेशकश की है। ये आर्थिक सिद्धांत यह समझाने का प्रयास करते हैं कि अर्थव्यवस्था क्यों और कैसे अपने विकास की प्रवृत्ति को छोड़, अस्थायी तौर पर, मंदी में आ सकती है। इन सिद्धांतों को मोटे तौर पर आर्थिक कारकों, वित्तीय कारकों या मनोवैज्ञानिक कारकों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए, किसी भू-राजनीतिक संकट के कारण कच्चे तेल की कीमतों में अचानक आया उछाल एक साथ कई उद्योगों में लागत बढ़ा सकता है या फिर एक क्रांतिकारी नई तकनीक तेजी से किसी उद्योग को अप्रचलित कर सकती है। ये दोनों घटनाएं व्यापक रिसेशन को ट्रिगर कर सकती हैं। “रियल बिज़्नेस साइकिल थियरी” इन सिद्धांतों का सबसे अच्छा और आधुनिक उदाहरण है।

रिसेशन के अन्य प्रमुख कारणों में से एक है तेज़ी से बढ़ती महंगाई दर, जिसे मुद्रास्फीति या इनफ्लेशन कहा जाता है। मुद्रास्फीति का तात्पर्य किसी समय अवधि में वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में आयी वृद्धि से है। मुद्रास्फीति की दर जितनी अधिक होगी, हम पहले की तुलना में उतनी ही कम वस्तुओं और सेवाओं को खरीद पाएंगे। बढ़ती मुद्रास्फीति के माहौल में लोग खर्च में कटौती करते हैं और अधिक बचत करने लगते हैं। जीडीपी में गिरावट आती है और बेरोजगारी

की दर बढ़ जाती है क्योंकि कंपनियां लागत कम करने के लिए श्रमिकों को काम देना बंद कर देती हैं (मुद्रास्फीति के आकलन के कई तरीके हैं पर सभी एक ही तरह का बदलाव दिखाते हैं)।

इसे समग्र रूप से समझने के लिये रेपो रेट के साथ महंगाई दर को भी देखना ज़रूरी है। जहां कम होती महंगाई दर को आम जनता के द्वारा सराहा जाता है वहीं मुद्रास्फीति का एक निश्चित स्तर के ऊपर रहना स्वस्थ आर्थिक व्यवस्था का सूचक है। यह संकेत होता है कि बाज़ार में माल की खपत आपूर्ति से ज्यादा है और ऊपरी तौर पर यह इस ओर भी इशारा करता है कि लोगों के पास खर्च करने के लिये पर्याप्त लिक्विडिटी है।

अब यह भी समझें कि भारत की मुद्रास्फीति लगातार कम हो रही है। शुरुआत में तो सरकार ने महंगाई कम करने के लिए खूब तालियां बटोरीं पर धीरे-धीरे यह साफ हो रहा है की महंगाई दर में आयी कमी दरअसल गहराते रिसेशन और कम होती मांग की वजह से है।

रिसेशन के कई अन्य कारण हो सकते हैं और यह भी सम्भव है कि बहुत सारे कारण एक साथ मौजूद हों। रिसेशन के कई प्रकारों में से एक, साइक्लिकल रिसेशन या चक्रीय मंदी है जिसकी वजह से लगभग हर दस साल में एक बार वैश्विक अर्थव्यवस्था बुरी तरह चरमरा जाती है। साइक्लिकल रिसेशन का असर सबसे ज्यादा विकसित अर्थव्यवस्थाओं पर दिखता है, पर बाकी देशों पर भी इसकी आंच तो आती ही है। ध्यान देने वाली बात यह कि इस बार की मंदी में ऐसा कोई कारण प्रत्यक्ष नहीं है। इसके विपरीत भारतीय रिजर्व बैंक चार बार लगातार रेपो रेट कम कर चुका है। इसके पीछे तर्क यह दिया जा रहा है कि अर्थव्यवस्था में तेज़ी आएगी पर रेपो रेट अत्यधिक कम करने से मुद्रास्फीति अचानक बढ़ भी सकती है। ओइसीडी के डेटा में ऐसा ही दिख रहा है।

भारत की अर्थव्यवस्था में आये रिसेशन की वजह मुख्य तौर से सरकार की नीतियां हैं जिनसे सम्पूर्ण उद्योग जगत त्रस्त है। फिर चाहे वह जीएसटी का हड़बड़ी में लागू किया जाना हो या उसे लागू करने के बाद उसमें एक-एक कर किये गये सैकड़ों बदलाव। अभी देश नोटबंदी से उबरने के कगार पर ही था कि जीएसटी लागू कर दिया गया। इस बेतुके निर्णय से उपजे परिणाम को अब पूरा देश भुगत रहा है। दिये गये डेटा से यह साफ होता है कि जटिल प्रक्रियाओं के कारण कई लोग अपना जीएसटी सरेंडर कर चुके है और कई इस प्रक्रिया में हैं। दो साल पहले जमा किए गये बिलों की जांच नहीं हो पायी है जिससे धांधली और धोखाधड़ी की सम्भावना तो है ही, साथ ही सरकार का अब यह प्रयास है कि इनकम टैक्स विभाग के अधिकारियों को और अधिकार दिए जाएं। यह एक नए प्रकार के संकट, टैक्स टेररिज़म, की ओर इशारा करता है।

सरकार कई प्रमुख विषयों पर गौण दिखाई देती है, वहीं दूसरे विषयों पर दो खास उद्योगपतियों की पैरोकार के रूप में कार्य करती हुई दिखती है। ऐसे में उद्योग जगत में हाहाकार मचा हुआ

है। लगभग 2000 करोड़पति पिछले पांच वर्षों में भारत से पलायन कर चुके हैं और सैकड़ों अन्य उसी राह पर दिख रहे है।

रिसेशन के जाने-माने उदाहरणों में संयुक्त राज्य अमेरिका का 2008 में उत्पन्न वित्तीय संकट है और 1930 का ग्रेट डिप्रेशन (महामंदी) है। इन दोनों मंदियों की वजह से वैश्विक रिसेशन के हालात उत्पन्न हो गए थे पर 1930 का रिसेशन 2008 वाले से कहीं बड़ा था। डिप्रेशन एक गहरा और लंबे समय तक चलने वाला रिसेशन है, हालांकि डिप्रेशन घोषित करने के लिए कोई विशिष्ट मानदंड मौजूद नहीं है पर ग्रेट डिप्रेशन की अनूठी विशेषताओं में जीडीपी में आई 10 फीसदी से अधिक की गिरावट और 25 फीसदी तक पहुंची बेरोजगारी की दर शामिल हैं।

विश्व भर में ये कयास लगाये जा रहे हैं कि इस बार की मंदी न केवल वैश्विक है बल्कि उससे उत्पन्न हालात 1930 के ग्रेट डिप्रेशन से भी खतरनाक होंगे। इसलिए इस बार की मंदी रिसेशन नहीं असल डिप्रेशन है! ऐसा क्यों कहा जा रहा है, इसे समझने के लिए हम आगे मौजूदा मंदी को और विस्तार से देखेंगे।

2

हाल में ही आयी एक खबर से अमेरिकी शेयर बाज़ार में गिरावट दर्ज़ हुई। अमेरिकी ट्रेजरी का यील्ड कर्व अस्थायी रूप से बुधवार, 14 अगस्त को उलट गया। इस घटना को यील्ड कर्व इनवर्जन कहा जाता है। यह जून 2007 के बाद से पहली बार हुआ है और निवेशक इसे लेकर बहुत चिंतित हैं।

उलटा यील्ड कर्व एक ऐसे वातावरण को दिखाता है जिसमें कर्ज के दीर्घकालिक उपकरण (लंबी अवधि के बॉन्ड), उसी क्रेडिट गुणवत्ता वाले अल्पकालिक उपकरण (शार्ट टर्म बॉन्ड) की तुलना में कम रिटर्न देने लगते हैं। मौजूदा यील्ड कर्व इनवर्जन की वजह से दो वर्ष वाले बॉन्ड 10 वर्ष वाले बॉन्ड के मुकाबले ज़्यादा रिटर्न देने लगे। यील्ड कर्व इनवर्जन के तीन मुख्य प्रकारों में यह कर्व सबसे दुर्लभ है और इसे आर्थिक मंदी (रिसेशन) का पूर्वसूचक माना जाता है।

अमेरिकी यील्ड कर्व पिछले 50 वर्षों में हर बार रिसेशन से पहले उलट गया था। यील्ड कर्व उलटने के बाद अधिकतम दो वर्षों के भीतर अमरीकी अर्थव्यवस्था में रिसेशन आने का इतिहास रहा है और यह संकेत 10 में से 9 बार रिसेशन के संकेत के रूप में सही सिद्ध हुआ है। इसलिये निवेशक यह मान रहे हैं कि अमेरिका में जल्द हीं मंदी आने वाली है। इंटरनेशनल बिज़नेस मीडिया में भी यही खबर चल रही है कि दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था रिसेशन की ओर बढ़ रही है।

इस ऐतिहासिक सह-संबंध के कारण, यील्ड कर्व को अकसर आर्थिक चक्र में आने वाले परिवर्तन के सटीक पूर्वानुमान के रूप में देखा जाता है। उदाहरण के लिए, ज्यादा पीछे जाने की भी ज़रूरत नहीं है। अमेरिकी ट्रेजरी यील्ड कर्व पिछली बार 2007 में उलटा हो गया था जिसके ठीक बाद अमेरिकी इक्विटी बाजारों में भारी गिरावट आयी थी और अमेरिका मंदी की चपेट में आ गया था।

ऐसे में पूछा जाना चाहिए कि इस घटना के साथ भारत की अर्थव्यवस्था का क्या सम्बंध हो सकता है?

अमरीकी यील्ड कर्व उलटने से भारत की अर्थव्यवस्था का रिश्ता

अमरीकी ट्रेजरी यील्ड के सदृश भारत की आर्थिक प्रणाली में भारत सरकार के बॉन्ड हैं जो अलग-अलग अवधि की मैच्योरिटी वाले होते हैं और जीओआइ बॉन्ड के नाम से बिकते हैं। ध्यान रहे कि ये भारत सरकार के सेविंग बॉन्ड से भिन्न है। सेविंग बॉन्ड की ब्याज दर पूर्व-निर्धारित होती है। अब अगर जीओआइ बॉन्ड के ऐतिहासिक डेटा को देखें तो यह साफ हो जाता है कि भारत में यील्ड कर्व इंवर्जन पहले ही हो चुका है!! इस घटना को दो वर्ष से ज़्यादा बीत चुके हैं। इसलिए यह कहना कि हम मंदी की ओर जा रहे हैं सरासर बेईमानी है। कटु सत्य यही है कि हम मंदी में आ चुके हैं!

अब अगर आंकड़ों को फिर से देखें तो यह सभी इस बात की पुष्टि कर रहे हैं। भारत की इकॉनमी में रिसेशन आ चुका है और सबसे खतरनाक बात यह है कि मंदी का दौर भारत से शुरु हो रहा है।

यील्ड कर्व इंवर्जन की परिघटना दरअसल भविष्य में कम ब्याज दरों की भविष्यवाणी भी है क्योंकि लंबी अवधि के उपकरणों का रिटर्न कम होने की वजह से उनकी मांग घट जाती है। अब ध्यान दें तो भारतीय रिजर्व बैंक लगातार रेपो रेट कम कर रहा है। इसके पीछे तर्क यह दिया जा रहा है कि लोग पैसा बैंक में डालने के बजाय बाज़ार में लगाएंगे और पूंजी कम ब्याज पर उपलब्ध होगी जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में तेज़ी आएगी। रेपो रेट कम करने से मुद्रास्फीति कुछ समय के लिए बढी थी पर अब वह वापस कम होने लगी है। तो यह भी साफ हो चला है कि केवल रेपो रेट में कमी करने से इस भारी समस्या का समाधान नहीं होने वाला। साथ ही यह भी, कि सरकार को बखूबी पता है कि अर्थव्यवस्था में क्या हो रहा है।

प्रमुख एशियाई ऋण बाजारों में तो हमेशा से अमरीकी ट्रेजरी की चालों को प्रतिबिंबित करने का इतिहास रहा है इसलिए प्राथमिक रूप में यह आशंका भी है कि विश्व अर्थव्यवस्था मंदी के कगार पर है। मौजूदा वक्त में एशियाई बाजार यूएस और यूके के रुख पर नज़र रख रहे हैं क्योंकि निवेशक चीन और अमेरिका के व्यापार युद्ध से हो रहे नुकसान से बुरी तरह प्रभावित

हैं। जहां जर्मनी का जीडीपी कमज़ोर हुआ है वहीं चीन का औद्योगिक उत्पादन भी निराशाजनक रहा है जो वैश्विक अर्थव्यवस्था की कमजोरी को प्रबलता से रेखांकित कर रहा है। निवेशक लंबे अवधि वाले सिक्योरिटीज़ की लगातार छंटनी कर रहे हैं क्योंकि ब्याज दरों में गिरावट जारी रहने का अनुमान है।

दुनिया की सबसे खुली अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में स्थापित सिंगापुर भी वैश्विक व्यापार की मंदी महसूस कर रहा है। सिंगापुर में दो और 10 साल की यील्ड के बीच का अंतर पिछले सप्ताह से कम हो गया है, जो नवंबर 2006 के बाद सबसे छोटा अंतर है। यानी वहां कभी भी यील्ड कर्व इंवर्जन हो सकता है। सिंगापुर की जीडीपी में पिछली तिमाही में 3.3 प्रतिशत की कमी आई, जो नरम होती मांग और इलेक्ट्रॉनिक्स क्षेत्र में मंदी की वजह से है।

मलेशिया में तीन साल के नोट की तुलना में 10 साल के नोट की यील्ड में गिरावट है। हालांकि बॉन्ड में किये गए निवेश ने मुद्रास्फीति में हालिया उतार-चढ़ाव को कम कर दिया है पर उम्मीद की है कि आने वाले महीनों में खपत कर में बदलाव के कारण कीमतों पर दबाव बढ़ेगा।

ऑस्ट्रेलिया का यील्ड कर्व सपाट रहा है, साथ ही स्थानीय यील्ड दबाव में हैं। जापान में, 1990 के दशक में देश के आर्थिक बुलबुले के फूटने के बाद पहली बार यील्ड कर्व उलटा हो रहा है। वहां के केंद्रीय बैंक की "यील्ड कर्व कंट्रोल पालिसी" बाजार की चाल को प्रभावित करने में एक बड़ी भूमिका निभाती है लेकिन तब भी स्थानीय नीति वैश्विक बदलावों से प्रतिरक्षा नहीं देती। इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि जापान भी जल्द ही कर्व इंवर्जन का शिकार होने वाला है।

हमारी उदासीनता और सरकार की लापरवाही

ऊपर दी गई जानकारियों से यह साफ है कि एक बहुत बड़ा पतन हो रहा है। भारतवासियों को ध्यान देने की ज़रूरत है क्योंकि आम जनता की आर्थिक मामलों के प्रति उदासीनता का पूरी तरह से फायदा उठाते हुए सरकार देश की अवाम को धोखा देने का काम कर रही है। हम इस वैश्विक पतन के ठीक बीचोबीच मौजूद हैं पर जहां दुनिया भर की सरकारें अपने देश को इस मंदी से प्रतिरक्षा देने के प्रतिबद्ध दिखाई देती हैं वहीं हमारी सरकार इस मामले में पूरी तरह लापरवाह दिख रही है। वर्ल्ड गोल्ड काउन्सिल दुनिया भर के सोने के कारोबार पर नज़र रखती है। उसके डेटा के मुताबिक रूस और चीन आने वाले मंदी के दौर के लिये स्वर्ण भंडार बढा रहे हैं, वहीं भारत सरकार देश के पैसे से विदेशी खज़ाना भर रही है।

अब एक और आंकड़े पर नज़र डाली जाए। ज़्यादातर देशों के केंद्रीय बैंकों में आयात के छह महीने के मूल्य के बराबर विदेशी मुद्रा भंडार रखने की प्रवृत्ति होती है क्योंकि विदेशी मुद्रा भंडार केवल चालू खाते के घाटे को पूरा करने के लिए आवश्यक है न कि पूरे आयात के लिए। इसमें

भी हालांकि कई मत हैं क्योंकि यह निर्णय किसी अर्थव्यवस्था की मौजूदा स्थिति के आधार पर लिया जाता है। इस मापदंड के मद्देनजर भारत का विदेशी मुद्रा भंडार बहुत ही बड़ा है। अगर हम चालू खाते का घाटा जीडीपी के 7.5% भी पर मानें (जो कि बहुत अधिक है), तो लगभग 85 बिलियन डॉलर के विदेशी मुद्रा भंडार की आवश्यकता है जबकि भारत का वास्तविक भंडार 400 बिलियन डॉलर से ज़्यादा है। विदेशी मुद्रा भंडार भारत के कुल बाहरी ऋण के 80% के बराबर है। यह भी एक बहुत बड़ा अनुपात है।

जब रुपया डॉलर के मुकाबले अस्थिर होने लगता है तो विदेशी मुद्रा भंडार एक इंश्योरेंस के रूप में कार्य करता है पर भंडार को बनाये रखने की लागत बहुत ज्यादा है। जब आरबीआइ "स्पॉट" में (तुरंत डेलिवरी के लिये) डॉलर खरीदता है तो इससे भारतीय व्यवस्था में पैसा आता है और पैसा आने से महंगाई बढ़ती है। आरबीआइ नहीं चाहता कि महंगाई बढ़े इसलिए वह "स्पॉट" खरीद को "फॉरवर्ड" (देरी से डेलिवरी लेने का कांट्रेक्ट) में परिवर्तित करता है, पर फॉरवर्ड कांट्रेक्ट पर प्रीमियम का भुगतान करना होता है जो कि एक प्रत्यक्ष लागत है।

विदेशी मुद्रा भंडार के अन्य स्रोतों में फेडरल रिजर्व के उपकरण हैं जिनमें भारत का भारी निवेश है। ऊपर के ग्राफ से साफ है कि उस निवेश से जो रिटर्न मिलता है वह नगण्य है। विशेषज्ञों का कहना है कि आरबीआइ का काम सिस्टम में स्थिरता बनाये रखना है न कि निवेश प्रबंधन करना। अब सोचने लायक बात यह कि जो सेंट्रल बैंक 400 बिलियन के मुद्रा भंडार का प्रबंधन करता है वह उसके निवेश का प्रबंधन क्यों नहीं करता? भारत के सर्वोच्च वित्तीय संस्थान से ज्यादा कुशलता से यह काम कौन कर सकता है?

पूर्व आरबीआई प्रमुख और अर्थशास्त्री रघुराम राजन के शब्दों में – "हम अपने पास मौजूद विदेशी भंडार के लिए कुछ भी नहीं करते। हम दूसरे देश को वित्तपोषण कर रहे हैं जबकि हमें हीं वित्तपोषण की आवश्यकता है" ।

वर्ल्ड बैंक के इस डेटा के मुताबिक भारत के विदेशी मुद्रा भंडार का 84% हिस्सा डालर में है। इसमें सिर्फ डालर करेंसी की बात नहीं हो रही बल्कि डालर से जुडे हुए अन्य निवेश भी हैं। तब भी यह एक गम्भीर समस्या है। किसी कारणवश अगर डालर के मूल्य में गिरावट आती है तो भारत का विदेशी मुद्रा भंडार भी भरभरा कर गिर जाएगा। सबसे बुरी खबर यह है कि इस तरह की घटना और इसके नतीजे कितने बड़े पैमाने पर तबाही ला सकते हैं, यह जानने के बावजूद विदेशी मुद्रा भंडार में डालर का अनुपात लगातार बढ़ रहा है।

मुद्रा के रूप में डालर के ध्वस्त होने की भी बहुत चर्चा है और काफी समय से है पर विश्व की अर्थव्यवस्था में भारी अमरीकी दखल से लोग इसकी सम्भावना को कम ही मानते रहे हैं। यह स्थिति अब तेज़ी से बदली है। लगभग सभी अमरीकी उद्योग अब अपने कारखाने चीन में लगा रहे हैं। चीन लगातार इसमें उनकी मदद कर रहा है और वहां लागत भी कम है।

यह किसी से छुपा हुआ नहीं है कि घटती आर्थिक ताकत की वजह से अमरीका अब कहीं से भी दुनिया का नेतृत्व करने में सक्षम नहीं है। वहीं चीन नये ग्लोबल लीडर के तौर पर उभरा है। यही कारण है कि मंदी के दौर में भी चीन अमरीका के आर्थिक प्रतिबंधों का मज़बूती से जवाब देने में सक्षम है। अगर कोई गूगल पर "डालर कोलैप्स" सर्च करे तो उसे वास्तविकता नज़र आ जाएगी।

तो अब ठंडे दिमाग से इन सारी जानकारियों को आत्मसात करें।

इकॉनमी ढलान पर है, बैंक डूब रहे हैं, सरकारी उपक्रम खस्ताहाल हैं जिन्हें बेदर्दी से औने-पौने दाम में बेचा जा रहा है, आरबीआइ का निवेश मूल्यविहीन संपत्तियों पर है और रोज़गार खतम हो चला है। जो उम्रदराज पाठक ये सोच रहे हैं की उनका जीवन तो पेंशन से सुरक्षित है उन्हें चेता देना उचित है कि सरकार उनके पीएफ और पेंशन का भुगतान करने में भी असमर्थ होती जा रही है। इसलिए सेवानिवृत्ति की उम्र बढ़ायी जा रही है। अभी सब सुहाना लग रहा है पर 62 की उम्र में पता चले कि पेंशन नहीं मिलेगी तो क्या करेंगे, यह विचारणीय है।

एक बार इस महामंदी को एनपीए फ्राड से जोड़ कर देखें तो समझ जाएंगे कि आने वाले परिणाम अत्यंत घातक हो सकते हैं, इतने घातक कि अनुमान लगाना भी कठिन है। हो सकता है हमारी सम्पूर्ण वित्तीय प्रणाली का ही पतन हो जाए या फिर हमारी पहले से ही कमज़ोर मुद्रा हाइपर-इनफ्लेशन में चली जाए!

इनमें से कुछ या ये सभी घटनाएं वैश्विक पूंजीवादी व्यवस्था के "निष्कर्ष" के तौर पर देखी जानी चाहिए। निष्कर्ष यह है की पूंजीवादी व्यवस्था का पतन अब बहुत निकट आ चला है। जितना आप और हम सोच रहे हैं उससे कहीं निकट। केवल एक बात है जो हम नहीं जानते। वह है ट्रिगर इवेंट। वह क्या होगा या उसकी समयावधि क्या है जो वैश्विक दहशत का कारण बन सकता है? वह द्विपक्षीय तनाव भी हो सकता है जिसकी पर्याप्त सम्भावनाएं भारत-पाक, भारत-चीन, चीन-अमरीका, अमरीका-रूस के बीच देखी जा सकती हैं। वह ब्रेगज़िट या कोई अन्य घटना से भी हो सकता है। लेकिन यह निश्चित हो चला है कि अब इसे टाला नहीं जा सकता।

3

इधर बीच सरकार की ओर से जारी किये गये बयान साफ दिखाते हैं कि उसके भीतर हलचल है। रोज़ कोई नया बयान जारी कर सरकार अपने निकम्मेपन को ढंकने का प्रयास कर रही है, पर सभी घोषणाएं यही इशारा कर रही हैं कि सरकार अपनी बरबादी के ब्लूप्रिंट को लागू करने की ओर अग्रसर है।

सरकारी बैंकों के विलय पर की गई प्रेस कांफ्रेंस के ठीक बाद जीडीपी के आंकड़े जारी हुए। यह दर्शा रहा है कि सरकार अपने भुलावे को कायम रखना चाहती है। विलय की घोषणा के वक्त एक पत्रकार के सवाल पर माननीया बिफर पड़ीं। अगर यह आंकड़ा पहले जारी हुआ होता तब किस तरह के सवाल उठते?

जब सरकार मंदी की बात मानने को ही तैयार नहीं है तो इसके निराकरण की उम्मीद कैसे की जा सकती है? हालांकि अन्य बयानों में सरकार के नुमाइंदे "स्लोडाउन" मान रहे हैं और रंग बदलने की प्रवृत्ति अब पूरी तरफ स्थापित है तो कभी भी "स्लोडाउन" का "रिसेशन" हो जाएगा, ऐसी सहूलियत भी है!

जीडीपी के आंकड़ों में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के द्वारा संशय व्यक्त किये जाने से सरकार की मिट्टी पलीद हो चुकी है। उसकी विवेचना न करते हुए हम सीधे बैंक विलय पर आते हैं। सामान्य आर्थिक हालात होने पर बैंक मर्जर एक सकारात्मक कदम होता जिसका लम्बी अवधि में अवाम को अच्छा लाभ मिल सकता है। मौजूदा घटनाक्रम से यह प्रत्यक्ष है कि इस कदम से केवल आने वाले तूफान को टालने का प्रयास किया जा रहा है।

आसानी से समझने के लिए एक जहाज़ का उदाहरण लिया जा सकता है। जहाज़ की तली हमेशा अलग-अलग कम्पार्टमेंट में विभक्त रहती है। यह कम्पार्टमेंट जहाज़ में अचानक दरार आने पर पानी को समूचे जहाज़ में भरने नहीं देते। इस तरह पानी रिसने का असर सिर्फ एक कम्पार्टमेंट पर होता है और जहाज़ डूबने से बच जाता है। अब अगर आप हमारी इकॉनमी को एक जहाज़ मानें तो हमारे बैंक कम्पार्टमेंट का काम करते हैं। जिस तरह जहाज़ के एक कम्पार्टमेंट में दरार आने पर जहाज़ियों को इसका पता चल जाता है और वे डूबने से बचने के लिए ज़रूरी कदम उठा सकते हैं, वैसी ही विस्तृत प्रणाली में अगर एक भी बैंक इनसॉल्वेन्ट/दिवालिया हो जाए तो इससे बाकी बैंकों को चेतावनी मिलती है और वे अपने लिये समय रहते ज़रूरी कदम उठा सकते हैं।

सरकार ने एनपीए से लदे बैंकों का मर्जर कर के पहले से ही डूबते एक जहाज़ की कम्पार्टमेंट संरचना को खतम कर दिया है। इसके फलस्वरूप सबसे बुरी हालत वाले बैंक भी अब औसत एनपीए की श्रेणी में आ जाएंगे और बेपरवाही से देनदारी जारी रहेगी। बैंकिंग प्रणाली में एनपीए रूपी दरार पहले से मौजूद है जिससे रिसाव जारी है इसलिये अब पूरी प्रणाली भी डूबने की स्थिति में आ जाएगी!

जो बैंक एनपीए की वजह से बहुत बुरी हालत में थे और बिलकुल डूबने के करीब थे वे अगर डूब जाते तो वहां आर्थिक गतिविधियां एकाएक रुक जातीं और बैंक के ग्राहक बैंकों और सरकार को भी नहीं बख़्शते। इससे बाकी बैंक भी अपने हालात को आंकते और वैसी ही स्थिति में न पहुंच जाएं, इसलिए सरकार को कार्रवाई करने पर मजबूर करते। एक बैंक का दिवालिया होना इकॉनमी

पर कहर बन कर टूटता और शेयर मार्केट से लेकर अन्य वित्तीय संस्थान भी तेज़ गिरावट दर्ज करते, लेकिन इस एक मास्टरस्ट्रोक से सरकार ने अपने ऊपर के नजदीकी संकट को टाल दिया है। बैंकों के मर्जर से जो नया बैंक बनेगा उसके बड़े आकार के सामने डूबते बैंक का एनपीए कम नज़र आएगा और इस तरह सरकार बिना किसी मानक का उल्लंघन किए अपने कारोबार में लगी रह सकेगी।

जिन बैंकों का विलय हुआ है उनके एनपीए के आंकड़े इस बात को पूरी तरह साबित करते हैं। पहला और सरकार के लिए सबसे महत्वपूर्ण विलय पंजाब नैशनल बैंक, ओरिएंटल बैंक आफ कॉमर्स और युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया का हुआ है जिसमें यूबीआई का सबसे अधिक 24% एनपीए है, दूसरे नम्बर पर पीएनबी का 18% और तीसरे नम्बर पर ओबीसी का 17% एनपीए है। तीनों को मिला देने पर औसत एनपीए 18% हो जाता है जो कि सबसे ज़्यादा प्रभावित यूबीआई के 24% से काफी कम है।

गौरतलब हो कि यह डेटा ग्रॉस एनपीए का है जबकि सरकार नेट एनपीए के आंकड़ों पर बात कर रही है। कोई लोन डिफॉल्ट होने पर बैंक कर्ज़दार को 90 दिनों की मोहलत देता है जिसके बाद उस सम्पत्ति को ग्रॉस एनपीए से हटा कर नेट एनपीए के रूप में दर्ज किया जाता है। आरबीआइअब तक कई बार डिफॉल्टरों को समय का विस्तार दे चुकी है। साथ ही मौजूदा "स्लोडाउन" की वजह से कम ही उम्मीद है कि वे कर्ज़दार अपना कर्ज़ चुका पाएंगे। इन सब के मद्देनज़र उन एनपीए को नेट एनपीए ही माना जाना चाहिए। डूब चुकी सम्पत्ति पर आस लगाने से कुछ समय तक खाते ठीक रखे जा सकते हैं, पर अर्थव्यवस्था नहीं।

इसी तर्ज़ पर तीन और विलयों की घोषणा हुई है। सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (पीएसबी) को हालिया घोषणा के अलावा 3.19 लाख करोड़ रुपये का बेलआउट पहले ही दे चुकी है लेकिन उसके इस कदम पर संशय होना लाज़मी है। पहला तो यह कि एनपीए की ज़िम्मेदारी अभी तक साफ नहीं हुई है। अगर किसी से गलती नहीं हुई तो एनपीए का ये पहाड़ बना कैसे? कई अधिकारियों ने इन ऋणों पर गलत फैसले लिए होंगे लेकिन किसी पर कोई कार्रवाई नहीं हुई न ही उनका करियर प्रभावित हुआ। ऐसे में इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह पूरा प्रकरण सरकार की शह पर अंजाम दिया जा रहा है।

दूसरी बात यह कि री-कैपिटलाइज़ेशन या पुनर्पूंजीकरण का खेल मंदी का कारक भी हो सकता है। सरकार ने घोषणा की कि पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड्स के माध्यम से होगा और बाकी राशि बजटीय सहायता और बाजार में वृद्धि के माध्यम से आएगी। इस पैकेज की राशि देश की जीडीपी का लगभग 0.02% हिस्सा है, तो क्या इसी पैकेज ने सार्वजनिक उधार को प्रभावित किया?

बेलआउट पर जनता के नुकसान का सवाल भी उठता है। करदाताओं की पूंजी देकर हमारे बैंकों को उनके खराब व्यापारिक निर्णयों से बचाया जा रहा है जबकि हम यह भी नहीं जानते कि वे

निर्णय क्या थे! हम यह जानते हैं कि केवल 12 मामलों का ही कुल एनपीए में 25% का योगदान है। सरकारी खजाने से खराब व्यापार निर्णयों का भुगतान किया जा रहा है और हम करदाता इस बात से पूरी तरह अनजान हैं कि हमें किसने लूटा!

जैसे-जैसे मंदी गहरा रही है वैसे-वैसे सरकार मंदी छिपाने के अपने प्रयास भी तेज़ कर रही है। आरबीआइ की मुख्य वेबसाइट पर डीबीआइई की वेबसाइट का लिंक मौजूद है। डीबीआइई, डेटाबेस आफ इंडियन इकॉनमी के लिये प्रयुक्त है जहां बैंक समेत अन्य महत्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं की गतिविधि से सम्बंधित डेटा उपलब्ध है। पहले वहां सारे बैंकों के एनपीए से सम्बंधित तमाम जानकारियां भी उपलब्ध थीं पर अब वो सब पासवर्ड से सुरक्षित हैं। आप खुद इस पेज पर जा कर देखें। Other Tables सेक्शन में पांचवें टेबल के बाद कोई भी टेबल नहीं देखा जा सकता। क्या अवाम को यह नहीं जानना चाहिए कि किस औद्योगिक क्षेत्र में सबसे ज़्यादा एनपीए हुआ है? ऐसे में किस आधार पर खबरें चलेंगी? विश्लेषण कैसे हो पाएगा? क्या प्रजातंत्र में जनता को भुलावे में रखा जाना चाहिए? अगर नहीं तो यह व्यवस्था प्रजातंत्र कैसे है?

डेटा का खेल ही एनडीए सरकार की एकमात्र उपलब्धि है! जो सरकार जीडीपी जैसे प्रामाणिक आंकड़े को बरबाद कर चुकी है उससे और क्या उम्मीद की जा सकती है? डेटा का खेल सिर्फ वहीं तक सीमित हो ऐसा भी नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय पहले ही लोन डिफॉल्ट करने वालों का नाम न जारी करने पर सरकार को फ़टकार लगा चुका है। हाल की घोषणाओं से ठीक पहले सरकार ने आरबीआइ से 1 लाख 76 हज़ार करोड रुपये की उगाही की। इस रकम को आरबीआइ का सरप्लस बताया गया। इसी के साथ सरकारी अर्थशास्त्रियों और माननीय वित्तमंत्री ने भी एनपीए के कम होने को अपनी उपलब्धि के रूप में गिनाया।

जो आर्थिक मामलों में थोड़ी भी रुचि रखते हैं उन्हें एसएलआर के बारे में पता होगा। एसएलआर (Statutory Liquidity Ratio/ वैधानिक तरलता अनुपात) बैंकों के लिये एक मानक है जिसे कुल जमा राशि के प्रतिशत के रूप में अंकित किया जाता है। एसएलआर बैंकों को यह बताता है कि कुल जमा राशि के अनुपात में कितनी राशि को तरल संपत्ति के रूप में रखना आवश्यक है। यह राशि आरक्षित नकद अनुपात से अलग रखनी होती है।

आप इसको इस तरह समझें कि एक आम गृहस्थ अपनी कुल सम्पत्ति का एक हिस्सा खर्चे के लिये तरल (नकद) रूप में रखता है। तुरंत खर्च करने के लिये उपलब्ध इस राशि को आप सीआरआर मान सकते हैं पर इसके अलावा भी कुछ सम्पत्ति होती है जिसे कम अवधि में नकदी में बदला जा सकता है। ये होती है एसएलआर। परिभाषा में, एसएलआर परिसंपत्तियां आसानी से नकदी में परिवर्तित होने वाली संपत्ति हैं, जिसमें सरकारी बांड, या सरकार द्वारा अनुमोदित प्रतिभूतियां, सोना आदि शामिल हैं। एसएलआर का उद्देश्य यह है कि जब आरबीआइ सीआरआर

बढ़ा दे तो बैंकों को उस समय अपनी संपत्ति को बेचना न पड़े या संपत्ति का निपटारा न होने पर बैंक में तरलता कम न हो।

यदि कोई वाणिज्यिक बैंक वैधानिक तरलता अनुपात को बनाए रखने में विफल रहता है तो बैंक दर पर 3% प्रतिवर्ष की दर से जुर्माना लगाया जाता है। इसके अलावा अगर अगले कार्य दिवस पर भी डिफ़ॉल्ट जारी रहता है तो बैंक की दर से ऊपर 5% प्रतिवर्ष की दर से जुर्माना लगाया जाता है । केंद्रीय बैंक वाणिज्यिक बैंकों पर इस तरह का प्रतिबंध लगाता है ताकि ग्राहकों को उनकी मांग पर धनराशि आसानी से उपलब्ध हो सके। एनडीए सरकार ने अपने पूरे कार्यकाल में एसएलआर में 4 प्रतिशत कि भारी कमी की है! आगे उनका लक्ष्य है कि एसएलआर को 18% तक ले जाया जाए। अनुमानित रूप से एसएलआर में आई इस कमी से बैंकिंग प्रणाली में लगभग 5 से 6 लाख करोड़ रुपए आये होंगे। इस वर्ष के अंत तक जब एसएलआर 18% पहुंच जाएगा तब तक प्रणाली में 1 से 1.5 लाख करोड़ रुपए और आ जाएंगे।

एसएलआर में की गई कमी के अलावा आरबीआइ ने बडी तेज़ी से नए नोट भी जारी किए हैं। जहां 2017 में कुल मुद्रा प्रचलन 13 लाख करोड़ था वहीं 2019 आते आते इसमें 61.5% की ज़बरदस्त वृद्धि हुई है। यह राशि सीधे-सीधे व्यवस्था में गई है जिसके फलस्वरूप रुपये के मूल्य में गिरावट आई है। अगर नोटों की छपाई के साथ डालर-रुपए के विनिमय दर को देखें तो साफ समझ आता है कि रुपये में आई गिरावट सरकार की नीतियों की वजह से है। एनडीए सरकार ने आते ही (2014-15) नोटों की तेज़ छपाई की जिससे व्यवस्था में रुपया बढ़ा जिसके प्रभावस्वरूप 2015-16 में रुपए की विनिमय दर में गिरावट आई। नोटबंदी से रुपए के प्रसार में (2016-17) कमी आई और इसका सीधा लाभ विनिमय दर (2017-18) को मिला और रुपया मजबूत हुआ। फिर दोबारा जब मुद्रा तेज़ी से जारी होने लगी तब रुपया गिरने लगा।

एनडीए सरकार की नीति शुरु से ही देश के पैसे से कारपोरेट और फेडरल रिजर्व को वित्तपोषित करने की रही है। जहां पूरा विश्व डालर में आई गिरावट के मद्देनज़र अपना निवेश डालर से दूर ले जा रहा है वहीं भारत सरकार लगातार डालर और उससे जुडी संपत्तियों का भंडारण कर रही है। भारत के विदेशी मुद्रा भंडार में डालर का प्रतिशत काफी ज़्यादा है जिसके बारे में पिछले लेख में बताया जा चुका है। आरबीआई की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार वित्त वर्ष 2017-18 के दौरान 8.46 मीट्रिक टन सोना स्टॉक होल्डिंग्स में जोड़ा गया। यह इस दशक में भारत की पहली खरीद है और किसी चुटकुले की तरह लगता है। इसके पहले 2009 में यूपीए-2 के दौरान मंदी से उभरते भारत ने 200 मीट्रिक सोना खरीदा था।

आरबीआइ के सरप्लस से लिए गए 1,76,000 करोड़ भी अपने आप में धोखाधडी है! क्रमवार देखें तो सरकार के पूरे कार्यकाल में उसकी नज़र आरबीआइ की पूंजी पर थी। एक्सपर्ट कमिटी की रिपोर्ट में इस बारे में स्पष्ट जानकारी दी गई है।

रिपोर्ट से ज़ाहिर है कि जालान समिति भी दिये गए तथ्यों से वाकिफ है। तब उन्होंने सरकार की मनमानी को स्वीकृति क्यों दी?

THE CENTRAL BANK OF NEW ZEALAND HAS IN PLACE A WELL-DEVELOPED ECONOMIC CAPITAL FRAMEWORK TO MODEL ITS CAPITAL REQUIREMENTS. THE RESERVE BANK OF INDIA IS ALSO SEEKING TO PUT IN PLACE AN ECONOMIC CAPITAL FRAMEWORK.

-RBI Annual Report 2015

पहले तो ईसीएफ का गठन आरबीआई के लिए नया है। दूसरा यह, कि समिति ने किसी पूर्व स्थापित मानक के आधार पर सरप्लस निर्धारण नहीं किया बल्कि एक नए ईसीएफ को प्रस्तावित किया जिसके आधार पर आरबीआइ का सरप्लस "ज़्यादा हो गया" ।

दिये गए टेबल से सरकारी चालाकी की झलक मिलती है। पूर्ववर्ती ईसीएफ में मार्केट रिस्क, सीआरबी, क्रेडिट रिस्क और आपरेशनल रिस्क अलग-अलग आंके जाते थे जबकि नए ईसीएफ के प्रावधान मार्केट रिस्क को छोड़ कर बाकी रिस्क को सीआरबी के अधीन ले आए।

मार्केट रिस्क का प्रावधान 24.4% से घटा कर 18.9% कर दिया गया और दलील दी गई कि बाकी रिस्क प्रावधान एक नए नाम से किया गया है (फाइनेनशियल एंड मानिटरी सस्टेनेबिलिटी रिस्क – 4.5-5.5 %)। एक ओर जहां इससे मार्केट रिस्क को कम आंका गया वहीं फाइनेनशियल एंड मानिटरी सस्टेनेबिलिटी रिस्क को सीआरबी के अधीन लाने से सरप्लस "पैदा" हो गया। ध्यान दें कि कुल एक्सेस, फाइनेनशियल एंड मानिटरी सस्टेनेबिलिटी रिस्क एक्सेस के बराबर है।

(साभारः मीडियाविजिल)

विशेष लेख

दलितों को खुले में शौच की सज़ा मौत

सीपीआइ का जांच दल

बीते 25 सितम्बर को मध्य प्रदेश के शिवपुरी ज़िले के एक गाँव भावखेड़ी में दो बच्चों की नृशंस हत्या कर दी गयी थी। मीडिया में कारण यह आया था कि उन्हें खुले में शौच करते देख उसी गाँव व्यक्ति को गुस्सा आ गया और उसने बच्चों को मार डाला। सीपीआई का एक छः सदस्यीय जांच दल मामले की तहक़ीक़ात के लिए 1अक्टूबर 2019 को शिवपुरी और भावखेड़ी गया था। ग्रामीणों और पीड़ित परिवार से तथा अन्य कर्मचारियों, शिक्षकों व बच्चों से बात करने पर हमारे सामने जो तस्वीर उभरी, उसके आधार पर तैयार यह रिपोर्ट। जांच दल के सदस्यों ने मृतक बच्चे अविनाश के पिता और मृतक रौशनी के भाई मनोज वाल्मीक से बातचीत की, गांव का जायजा लिया। प्राइमरी स्कूल में बच्चों व शिक्षकों से बातचीत के आधार पर तैयार की गई है।

व्यापक सन्दर्भ एवं पृष्ठभूमि

इसी गाँधी जयंती को यानि 2 अक्टूबर 2019 को प्रधानमंत्री ने भारत को ऐसा देश घोषित कर दिया जहाँ किसी गाँव में अब कोई खुले में शौच नहीं जाता है। घोषणा के अनुसार सरकार ने स्वच्छ भारत योजना के तहत सभी ज़रूरतमंदों के लिए क़रीब 10 करोड़ घरों में शौचालय बनवा दिए हैं और अब किसी को खुले में शौच के लिए जाने की ज़रुरत नहीं है। फिर भी कभी कोई पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाला ऐसा गलत काम करता है तो उसे पहली बार एक सौ रुपये और एक बार से अधिक यह अपराध करने पर इससे भी अधिक का दंड देना होगा।

गाँव के माहौल का जायज़ा

ऐसी किसी घोषणा का मतलब ये होता है कि अब जब सभी के घर में शौचालय बन चुके हैं तो जो ये कह रहे हैं कि उनके यहाँ नहीं बना है तो वे सरकार को झूठा साबित कर रहे हैं। और आजकल सरकार ऐसी है कि उसे झूठा कहने का मतलब देश का अपमान करना माना जाता है। इसलिए जो सरकार को झूठा कहे वो देशद्रोही है, देश का गद्दार है। अनेक राज्यों से ऐसी ख़बरें हैं जिनमें अनेक परिवारों को शौचालय बनाने का पैसा नहीं दिया गया है और उनके घरों में शौचालय नहीं बने हैं लेकिन उनके गांवों को खुले में शौच से मुक्त घोषित किया जा चुका है और इसलिए वे शिकायत कर रहे हैं कि जब सैकड़ों घरों में अभी शौचालय न होने पर भी उन्हें खुले में शौच से मुक्त गाँव घोषित किया जा चूका है तो वे क्या करें? प्रशासन इनकी शिकायतों

से निपटने की योजना बनाये, उसके पहले ही भारत के प्रधानमंत्री ने ग्रामीण भारत को खुले में शौच से मुक्त भारत घोषित कर दिया है। अब ज़ाहिर है कि योजना शौचालय न होने की शिकायतों से निपटने की नहीं, अपितु देश के गद्दारों से निपटने की बनायी जाएगी जो सरकार की छबि धूमिल करना चाहते हैं।

तो मोदी जी से लेकर अमिताभ बच्चन और अक्षय कुमार तक, और सरकारी अधिकारियों से लेकर ठेकेदारों तक सबका आभार व्यक्त करना ही देशभक्ति है कि इन सभी महानुभावों ने मिलकर देश की करोड़ों-करोड़ जनता को इतना शिक्षित, ज़िम्मेदार और पर्यावरण के प्रति जागरूक बना दिया कि अब कोई खुले में शौच करने नहीं जाता, जाता तो दूर, सोचता भी नहीं। और सोचने की ज़रुरत ही कहाँ है, जब घर में ऐसा शौचालय है जिसमे 24 घंटे पानी के आने का प्रबंध है और गंदगी दूर-दूर तक फटक नहीं सकती।

तो ऐसे में एक गाँव है। नाम है उसका भावखेड़ी। भावखेड़ी गाँव इस 2 अक्टूबर के भी पहले पिछले साल 2018 की अप्रैल में ही ओडीएफ घोषित हो गया। ओडीएफ मतलब ओपन डेफिकेशन फ्री यानि जहाँ कोई खुले में शौच नहीं जाता।

मध्य प्रदेश के शिवपुरी ज़िले के सिरसौद थाना क्षेत्र के उसी गाँव भावखेड़ी में 25 सितम्बर 2019 को दो व्यक्तियों ने सड़क किनारे शौच करते दो बच्चों को लाठी मार-मारकर उनके सर फोड़ दिए और बच्चों ने वहीं दम तोड़ दिया। घटना सुबह क़रीब 6 बजे की बताई जाती है। मरने वाले बच्चों में एक थी रौशनी और दूसरा था अविनाश। यूँ तो रौशनी की उम्र 12 साल थी और अविनाश 10 वर्ष का, लेकिन रिश्ते के लिहाज से रौशनी अविनाश की बुआ थी।

मध्य प्रदेश के जिस शिवपुरी ज़िले में यह वीभत्स घटना घटित हुई, वो अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए विख्यात है और माधव राष्ट्रीय उद्यान होने की वजह से पर्यटन के नक़्शे पर भी जाना जाता है। किसी ज़माने में अपनी ठंडी आबोहवा के कारण ये शहर सिंधिया राज में ग्वालियर रियासत की ग्रीष्मकालीन राजधानी भी थी। प्राकृतिक तौर पर भले इस इलाक़े का मिजाज़ अपने आस पास से अलग हो, लेकिन सांस्कृतिक तौर पर इस ज़िले के रहनेवालों में भी वही सामंती संस्कार देखने को मिलते हैं जो इस पूरे बुंदेलखंड और चम्बल के इलाक़े में पाए जाते हैं।

जाँच दल

अख़बारों में समाचार पढ़कर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) का एक छः सदस्यीय जाँच दल शिवपुरी ज़िले के इस गाँव में गया और तथ्यों की पड़ताल कर घटना के निहितार्थ समझने का प्रयास किया। इस जाँच दल में भाकपा के राष्ट्रीय केन्द्र की ओर से विनीत तिवारी, मध्य प्रदेश राज्य केन्द्र की ओर से राज्य सचिव मंडल सदस्य और अखिल भारतीय किसान सभा के प्रदेश महासचिव प्रह्लाद बैरागी, भारतीय महिला फेडरेशन की प्रदेश अध्यक्ष कृष्णा दुबे, राज्य परिषद्

सदस्य और गुना ज़िले के सचिव मनोहर मिराटे, अखिल भारतीय किसान सभा के पूर्व अध्यक्ष योगेंद्र शर्मा और यूथ फेडरेशन के प्रदेश सहसचिव सुनील कुशवाह शामिल थे।

हम वहाँ अविनाश के पिता मनोज वाल्मीक से मिले, गाँव में मौजूद प्राथमिक और माध्यमिक शालाओं के शिक्षकों और विद्यार्थियों से और गाँव के अन्य लोगों से भी मिले। बाद में हमने शिवपुरी ज़िले के प्रशासनिक अधिकारियों, पत्रकारों और अन्य आम नागरिकों से भी बात की। जाँच के निष्कर्ष और हमारे सुझाव हम इस रिपोर्ट में साझा कर रहे हैं।

घटना का ब्यौरा

जब हम 1 अक्टूबर, 2019 को शिवपुरी जिला मुख्यालय से क़रीब 20 किलोमीटर दूर स्थित गाँव भावखेड़ी पहुँचे तो सबसे पहले हमने मृतकों के परिजनों से मुलाक़ात की। गाँव से बाहर की ओर, गाँव के दूसरे किनारे पर मृतक अविनाश के पिता मनोज वाल्मीक का घर था। घर क्या था तीन-चार फुट उठायी गयीं मिटटी की कच्ची दीवारें थीं और ऊपर तिकोना छप्पर था। घर में कोई दरवाज़ा भी नहीं था। मनोज वाल्मीक ने बताया कि जिस सुबह उसके बेटे अविनाश और बहन रौशनी का क़त्ल हुआ, उसके पहले वाली रात, यानि 24 सितम्बर 2019 को वो अपने पूरे परिवार के साथ अपने पिता के घर पर रुका था क्योंकि उस शाम उनके यहाँ पुरखों के श्राद्ध का कार्यक्रम था। मनोज वाल्मीक ने बताया कि वो गाँव में खेत मज़दूरी का काम करता है और उसकी पत्नी भी निंदाई – गुड़ाई का काम करती है। लेकिन खेती में बहुत कम दिन ही काम रहता है इसलिए बाकी दिनों में वो खुद मज़दूरी के लिए शिवपुरी या आसपास के इलाकों में चला जाता है जहाँ काम मिल रहा हो। एक रोज़ काम के उसे 100 से 150 रुपये तक मिलते हैं और उसकी पत्नी को कभी 80 तो कभी 100 रुपये रोज़। उसकी पत्नी गाँव के बाहर नहीं जाती।

मनोज ने बताया कि अगले दिन सुबह क़रीब 6 बजे हम सब सो रहे थे कि बाहर से आते शोर को सुनकर मेरी और घर के लोगों की नींद खुली और हम बाहर गए। वहां हमने देखा कि रौशनी और अविनाश ख़ून में लथपथ पड़े थे और हाथ में लाठी लिए हाकिम सिंह यादव और उसका भाई रामेश्वर यादव बच्चों को मार रहे थे। जब हम वहां पहुंचे और उन दोनों को पकड़ा तब तक बच्चे तड़प-तड़प कर शांत हो चुके थे। और भी गाँव के लोग इकट्ठे हो चुके थे। हमारे पड़ोस में रहने वाले महेश जाटव को हमने पुलिस बुलाने के लिए कहा। उसने 100 नंबर पर फ़ोन करके पुलिस बुलाई।

प्राइमरी स्कूल में बच्चों व शिक्षकों से बातचीत

मनोज वाल्मीक ने यह भी बताया कि उनके परिवार के साथ गाँव में जातिगत भेदभाव का व्यव्हार होता था। हैंडपंप से पानी लेने से लेकर बड़ों और बच्चों को स्कूल में भी भेदभाव का शिकार होना पड़ता था। उसने यह भी बताया कि रौशनी पर आरोपित यादव परिवार के पुरुषों

की बुरी नज़र थी। करीब एक बरस पहले हाकिम सिंह और उसके भाई रामेश्वर ने रौशनी के साथ छेड़खानी की थी जिसके बारे में रौशनी ने अपने भाई मनोज वाल्मीक को नहीं बताया था ताकि झगड़ा न हो। लेकिन उसने उस घटना के बारे में अपनी भाभी यानि मनोज वाल्मीक की पत्नी सम्पत बाई को जानकारी दी थी। हमारी बातचीत के दौरान सम्पत बाई भी वहीँ मौजूद थी और उन्होंने भी पूछने पर मनोज की बात की तस्दीक की। मनोज वाल्मीक के मुताबिक उसने जब रौशनी के अचेत शरीर को देखा था तो रौशनी के कपडे फटे हुए थे जिससे उसे ये अंदेशा था कि उसके साथ दोनों आरोपितों में से किसी एक ने या दोनों ने रौशनी के साथ ज़बरदस्ती करने की कोशिश की होगी जिसका प्रतिरोध करने पर उसे और अविनाश को आरोपितों ने मार दिया होगा।

मनोज वाल्मीक ने यह भी बताया कि पिछले वर्ष उसे हाकिम सिंह और रामेश्वर सिंह यादव ने अपने खेत पर काम के लिए बुलाया था लेकिन वो बहुत कम मज़दूरी दे रहे थे। इस पर उसका उनसे विवाद भी हुआ था और उन्होंने मनोज वाल्मीक को गालीगलौच भी की थी। लेकिन उस बात को तो साल भर हो गया। उस घटना का बच्चों से एक साल बाद बदला क्यों लिया उन्होंने? मनोज वाल्मीक ने यह भी कहा कि डेढ़-दो साल पहले पंचायत सचिव ने शौचालय के लिए कागज़ बुलाये थे लेकिन उसके बाद कुछ हुआ नहीं। न हमें शौचालय मिला न हमने आगे पूछताछ की।

मनोज वाल्मीक की बात सुनकर हम लोग नज़दीक ही मौजूद गाँव की प्राथमिक शाला में गए जहाँ अविनाश पढ़ा करता था। वहाँ पहुँचकर हमने हर बच्चे से उनका नाम पूछा और ये पाया कि यादवों, जाटवों, शाक्य, परिहार आदि जातियों के बच्चे एकदूसरे के साथ बैठे थे और ऐसा कम से कम उस दिन तो नहीं लगा कि बच्चे जातीय समूहों के आधार पर बिठाये जाते हों। शिक्षकों में से एक स्वयं जाटव समुदाय के थे और प्रधानाध्यापिका का प्रभार सम्भाले महिला शिक्षिका भी अन्य पिछड़ा वर्ग समुदाय से थी। उन्होंने बताया कि प्राथमिक विद्यालय में अविनाश "अवि" के नाम से भर्ती था और भेदभाव जैसी किसी बात का सवाल ही नहीं उठता। स्कूल के सामने एक हैण्डपम्प था और लड़के- लड़कियों के लिए पार्टीशन किया हुआ बिना छत का एक पेशाबघर। प्राथमिक शाला में चार कमरे थे जिनमें से तीन बारिश के पानी के टपकने की वजह से उपयोग की हालत में नहीं थे। केवल एक कमरे में सभी कक्षाओं के बच्चे बैठे हुए थे। हैण्डपम्प पर कुछ ग्रामीण मौजूद थे जिनसे बातचीत में उन्होंने सहमी जुबान से कत्ल करने वाले हाकिमसिंह यादव के मानसिक रोगी होने की बात कही।

पीड़ित परिवार की महिलाओं को सांत्वना देतीं साथी कृष्णा दुबे

वहाँ से हम करीब आधा किलोमीटर दूर मौजूद माध्यमिक शाला गए जहाँ सातवीं कक्षा में रौशनी पढ़ती थी। वहाँ मौजूद अध्यापकों से बात करने पर पता चला कि वहाँ तीन गाँव के बच्चे पढ़ने

आते हैं। काफी साइकिलें बाहर खड़ी हुई थीं और बच्चे कक्षाओं में मौजूद भी थे। बाहर एक पेंटर स्कूल के बाहर लिखे सूचनापट और अन्य शासकीय विज्ञापनों को फिर से लिख रहा था। जाहिर था कि इस हत्याकांड के बाद अनेक नेताओं और शासकीय अधिकारियों के दौरों ने उन्हें स्कूल को ठीक-ठाक प्रदर्शन योग्य रखने के लिए विवश किया होगा। स्कूल से लगा हुआ ही आंगनबाड़ी केंद्र और पंचायत भवन भी था।

वहाँ से पैदल करीब 200-300 मीटर दूरी पर मौजूद घटनास्थल की ओर बढ़ने पर हमने वो जगह देखी जहाँ रौशनी और अविनाश के शव पाए गए थे। सड़क के एक किनारे पर वे शौच के लिए बैठे होंगे जब उनपर प्राणघातक हमला हुआ। छः दिन बाद भी खून के धब्बे वहाँ मौजूद थे जिन पर मिट्टी डाल दी गई थी और पत्थरों से एक घेरा बना दिया गया था। वहाँ भी पुलिस के दो सिपाही मौजूद थे। सड़क के उसी तरफ बमुश्किल 25-30 कदम आगे मनोज वाल्मीक के पिता का घर था। सड़क के दूसरी तरफ दूर तक फैला हुआ एक खेत था जिसमें एक पक्का मकान बना हुआ था। उस तक जाने के लिए सड़क से एक पगडण्डीनुमा रास्ता जाता था। मकान सड़क से करीब 150-200 मीटर दूर रहा होगा। मनोज वाल्मीक के पिता के घर में कोई मौजूद नहीं था। वे सभी लोग गाँव के दूसरे सिरे पर मौजूद मनोज वाल्मीक के झोपड़ीनुमा घर पर मौजूद थे।

हमें मनोज वाल्मीक ने यह भी बताया था कि पुलिस को सूचना गाँव के ही मनोज वाल्मीक के पिता के पड़ोस में रहने वाले महेश जाटव ने की थी। हमने महेश जाटव से मिलने की कोशिश की लेकिन हमें उसकी माँ ने बताया कि वो किसी रिश्तेदार की गमी में शामिल होने के लिए गाँव से बाहर गया था। महेश से अगले दिन फोन पर सम्पर्क हुआ और उसने कहा कि शोर की आवाज़ सुनकर जब वो सड़क पर पहुँचा तो उसने बच्चों के क्षत-विक्षत शरीरों को देखा। वहाँ मनोज वाल्मीक के घरवाले मौजूद थे जो रो और चिल्ला रहे थे। वहीं मनोज के भाई ने महेश को अपना मोबाइल देकर इस घटना की इत्तला 100 नम्बर पर देने के लिए कहा जो उसने किया। उसके आधे घण्टे के भीतर ही पुलिस आ गई।

इस बात का उल्लेख इसलिए भी जरूरी है कि गाँव पहुँचने से पूर्व शिवपुरी में जिन भी लोगों से इस घटना के बारे में बात की उनका यह कहना था कि जिस व्यक्ति ने कत्ल किया वो तो दोषी है, लेकिन उसका भाई जो उसके साथ था वो निरपराध और निर्दोष है। उसे गलत फँसाया जा रहा है। उसने न केवल अपने भाई को कत्ल करने से रोकने की कोशिश की, बल्कि खुद ही फोन करके पुलिस को भी इत्तला की। यह जानकारी गलत निकली। पुलिस को फ़ोन हक़ीम सिंह के भाई रामेश्वर ने नहीं बल्कि महेश जाटव ने किया था। दूसरा बिंदु, जो हमें बताया गया था कि कत्ल करने वाला व्यक्ति अर्धविक्षिप्त है और उसका पिछले अनेक वर्षों से ग्वालियर तथा अन्य जगहों से मानसिक व्याधि का इलाज चल रहा है। पूछने पर हमें यह भी बताया गया कि चूँकि वो मानसिक रोगी है इसलिए इलाज के कोई कागजात उसने सम्भाल कर नहीं रखे।

(इस पर हमारा यह मानना था कि अगर हाक़िम सिंह मानसिक रोगी है तो उसने गाँव के अन्य लोगों के साथ या परिवार के अन्य जनों के साथ ऐसी कोई हरकत क्यों नहीं की। यह भी पता चला कि हाकिम सिंह यादव शादीशुदा है और तीन बच्चों का पिता भी है. उसकी पत्नी का नाम चंद्रा बाई है और 15 व 17 साल की दो लडकियां हैं तथा 18-19 साल की उम्र का लड़का भी है।)

बहरहाल गाँव वालों से बातचीत के दौरान ही यह भी पता चला कि हाक़िम सिंह लगभग बिला नागा गाँव के बाहर मौजूद मन्दिर में जाया करता था। हमलोग भी मंदिर गए और मन्दिर के पुजारी से बातचीत की। उन्होंने इस तथ्य की ताईद की कि वो लगभग रोज मन्दिर आया करता था और घण्टों तक मन्दिर में बैठा रहता था। पुजारी जी ने हमें यह भी बताया कि हाक़िम सिंह लंबे अरसे तक चित्रकूट में भी रहा और उसकी किसी मानसिक व्याधि के लिए उसका इलाज ग्वालियर के किसी डॉक्टर से भी चल रहा था। पुजारी जी ने कहा कि पिछले कुछ महीनों से वो अपने आप को राम, अपनी पत्नी को जानकी कहा करता था। वो यह भी कहता था कि उसे राक्षसों का संहार करना है। वारदात के दिन भी वो मंदिर पर आकर वापस अपने घर जा रहा था जब उसने यह काण्ड कर दिया। पुजारी जी के अनुसार उसने बहुत ही गलत किया। पुजारी जी ने यह भी बताया कि जाटव, शाक्य और अन्य ऐसी ही अनुसूचित जातियों के लोग मंदिर के बाहर खड़े होकर ही दर्शन करते हैं और अंदर नहीं आते। मंदिर गाँव वालों के चंदे से ही बनाया गया था।

हमने हाक़िम सिंह यादव के परिवार से मिलने की कोशिश भी की, लेकिन गाँव में मौजूद पुलिस और गांववालों ने बताया कि उसके परिवार के सभी लोग घटना के दिन से ही गायब हैं।

बातचीत के आधार पर हम इन निष्कर्षों पर पहुँचे कि –

1: रोशनी और अविनाश की निर्मम हत्या हाक़िम सिंह यादव ने ही की है। और उसके साथ मौका ए वारदात पर मौजूद उसके भाई रामेश्वर सिंह यादव की भी उपस्थिति संदिग्ध है। यह प्रचार किया गया है कि रामेश्वर सिंह यादव ने अपने भाई हक़ीम सिंह यादव को रोकने की कोशिश की लेकिन हमारे जाँच दल को यह लगता है कि अगर रामेश्वर सिंह यादव अपने भाई हाकिम सिंह यादव को वाकई रोकना चाहता तो उसका भाई, जो केवल एक लाठी लिए हुए था, दोनों बच्चों को मार डालने की कोशिश में कामयाब नहीं हो सकता था। आरोपितों से मिलने की और यह जानने की कि रामेश्वर सिंह यादव शुरू से साथ में था या बाद में आया, हमारी कोशिश कामयाब नहीं हुई क्योंकि वह दोनों न्यायिक हिरासत में बंद थे और उनसे संपर्क करने की अनुमति देने हेतु जिला मजिस्ट्रेट कार्यालय में उपलब्ध नहीं थीं।

2: बेशक ये निर्मम हत्या मानवता के नाम पर कलंक है किंतु उसके दो आयामों पर ध्यान दिया जाना जरूरी है-

जातीय वर्गीयकरण का भेद

जातीय वर्गीयकरण के आधार पर भेदभाव समूचे भारत देश की एक बड़ी त्रासदी है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि हिन्दू सामाजिक संरचना के भीतर मध्य भारत में वाल्मीक समाज सबसे निचले पायदान पर मौजूद है। भले ही जाटव, वाल्मीक, शाक्य, परिहार आदि सभी समुदायों को अनुसूचित जाति के एक समूह में शासकीय तौर पर गिन लिया जाए लेकिन अनुसूचित जातियों में भी स्तरीकरण मौजूद है, जिसकी वजह से जाटव अपने आप को वाल्मीक समुदाय से उच्च मानते हैं। भावखेड़ी गाँव में 269 परिवार निवास करते हैं। इनमे से सबसे अधिक परिवार हैं जाटव समुदाय के। जाटव के अलावा अनुसूचित जाति में शाक्य, परिहार और वाल्मीक समुदाय के भी थोड़े बहुत परिवार हैं। वाल्मीक तो दरअसल एक ही परिवार है। मनोज वाल्मीक के अलग झोपडी बाँध लेने से अब दो घर कहे जा सकते हैं। सामान्य वर्ग के कुल 7 परिवार हैं और 104 परिवार अन्य पिछड़ा वर्ग के हैं जिनमें 100 तो अकेले यादवों के ही परिवार हैं। कुल 2 या 3 परिवार सेन समुदाय के हैं। ज़ाहिर है आर्थिक संसाधनों का आधार भी जातिगत स्तर पर ही वितरित होता है।

विद्यालयों में भेदभाव

रोशनी के स्कूल में उसकी कक्षा के विद्यार्थियों से बात करने में जहाँ सभी विद्यार्थी रटे-रटाए स्वर में यह कह रहे थे कि उनके साथ कोई भेदभाव नहीं होता है, वहीं यह पूछने पर की रोशनी कक्षा में कहाँ बैठती थी, एक विद्यार्थी ने अनायास और सहज जवाब देते हुए कक्षा के एक कोने की ओर इशारा करते हुए कहा कि वो वहाँ सबसे अलग बैठती थी। निम्न कही जाने वाली जातियों को खान-पान के स्तर पर ऐसे भेदभाव झेलना बहुत आम है। हैण्डपम्प से पानी भरने के विषय में दलितों के साथ अपनाया जाने वाला अछूतों का बर्ताव आज भी जारी है। यह बात मनोज वाल्मीक ने सभी के सामने कही और किसी ने भी इस बात को नकारा भी नहीं कि गाँव से वे हैंडपंप से तभी पानी भर सकते थे जब उनसे ऊंची कही जानेवाली जातियों के लोग पानी भर लें। उसके बाद भी उन्हें हैंडपंप का हत्था साबुन से साफ़ करना होता था। या फिर अगर तथाकथित ऊँची जाति के लोग पानी भर रहे हों तो वे ही ऊपर दूर से उनके बर्तन में पानी डाल देते थे ताकि उनका स्पर्श भी हैंडपंप के हत्थे से न हो।

अल्पसंख्यक होने का अहसास

भावखेड़ी गाँव में दलितों में से भी अतिदलित माने जाने वाले वाल्मीक समुदाय का केवल एक घर था जो अतिदलित होने के साथ ही अल्पसंख्यक भी था। इसलिए न केवल यह आसानी से

समझा जा सकता है कि उनके साथ भेदभाव होता ही होगा, बल्कि एकमात्र परिवार होने की वजह से इसे उन्होंने भी अपनी नियति मान स्वीकार कर लिया होगा ।

3. अगर यह मान भी लिया जाये कि क़त्ल का आरोपित हाकिम सिंह यादव मानसिक असंतुलन का शिकार था तो भी हमें यह लगता है कि मानसिक असंतुलन में भी वह वर्गीय, जातीय और शारीरिक ताक़त के समीकरणों को बखूबी समझता था। मंदिर के पुजारी ने भी उसके बारे में यही कहा कि कुछ करता-धरता नहीं था लेकिन किसी से उलझता भी नहीं था। कुछ समय से हमेशा एक लट्ठ अपने साथ रखता था। लेकिन किसी और को मारने-पीटने का वाकया पहले कभी नहीं सुना।

हमारे विचार से पिछले कुछ समय से देश में अल्पसंख्यकों और दलितों के प्रति हिंसात्मक, लिंचिंग, या नफरत की घटनाओं में इजाफा हुआ है। यह घटना उसी का एक परिणाम है। जैसी मानसिकता को समाज में व्हाट्सप्प, फेसबुक, इंस्टाग्राम आदि सोशल मीडिया तथा मुख्यधारा मीडिया के मार्फ़त फैलाया जा रहा है, उससे व्यवस्था द्वारा हाशिये पर फेंके गए ऐसे लोगों का यह मानने लगना मुश्किल नहीं कि वे दलितों को, मुस्लिमों या ईसाईयों को, या उनका पक्ष लेने वाले वामपंथियों या उदार विचारधारा वाले व्यक्तियों को मार डालने में ही अपने जीवन को सम्पूर्ण और सफल समझें। इसमें यह भी विशेष तौर पर उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश में हुई ऐसी घटनाओं के बाद भी दोषी पुलिस, प्रशासन और न्यायपालिका से बिना कोई सजा पाए अपने समुदाय में एक नायक के तौर पर स्वीकार कर लिए जाते हैं और जातिगत भेदभाव आधारित राजनीति उन्हें प्रतिष्ठा भी दे देती है। इससे ऐसी नफरत की सोच रखने वाले अन्य व्यक्तियों का हौसला बढ़ता है और वे "धर्म" की रक्षा और "ईश्वर" के नाम पर ऐसे जघन्य अमानवीय कृत्यों को सही मान लेने के भ्रम में आ जाते हैं।

4. दलितों के प्रति हमारे समाज की मानसिकता क्या है, इसे हम रोज़ की ख़बरों और अपने आसपास के जीवन में घटने वाली सैकड़ों घटनाओं के मार्फ़त जानते हैं। इस जघन्य हत्याकांड के बारे में भी हमने जब लोगों से बात की तो बेशक सभी ने इस घटना की निंदा की, किन्तु कोई भी 'किन्तु' , 'परन्तु' , 'अगर' , 'मगर' लगाने से नहीं बचे। अधिकांश लोगों की प्रतिक्रियाओं को तीन भागों में रखा जा सकता है :

अ) काफी लोगों का कहना था कि अब उन हत्याओं पर वो दलित परिवार पैसे कमा रहा है। इस पर जब हमने ये कहा कि क्या आप अपने बच्चों की यूँ हत्या हो जाने देंगे अगर आपको भी पैसे मिलें? इस बात का कोई जवाब लोगों के पास नहीं था। ये मुमकिन है कि पीड़ित परिवार के हितैषी और रिश्तेदार उसे ये सलाह दे रहे होंगे कि जो हो गया सो हो गया। अब कुछ भी करने से मरने वाले तो वापस नहीं आ सकेंगे। तो जो जीवित हैं, क्यों न उनका जीवन ही सुधार लिया जाये। बेहद गरीबी में रहते आये इस परिवार पर अगर ऐसे प्रलोभन काम भी कर जाएँ तो भी

उससे अपराध की तीव्रता और अपराधी का अपराध कम नहीं हो जाता। बल्कि पुलिस – प्रशासन को ऐसे इंतज़ामात करने चाहिए कि ऐसे प्रलोभन देने वाले कभी उसके इर्दगिर्द न फटक सकें।

ब) अनेक का यह भी कहना था कि दलित राजनेताओं द्वारा इसका राजनीतिक लाभ लेने के प्रयास किये जा रहे हैं। यह भी वैसा ही तर्क है कि अगर इन नृशंस हत्याओं की मूल वजह भारत की जाति व्यवस्था पर कोई सवाल उठाये तो उसे राजनीति करना कह दिया जाएगा जबकि अगर गैर दलित समुदायों में शादी, ब्याह, जन्म – मरण, जैसे हर काम में राजनेता आएं तो परिवार गौरवान्वित होते हैं। तब उन्हें नहीं लगता कि शादी ब्याह से लेकर मरने तक के अवसरों का राजनीतिकरण किया जा रहा है।

स) कुछ ने तो मनोज वाल्मीक को अपराधी बताने का भी इशारा किया। मनोज वाल्मीक बकरियाँ चराने के लिए अन्य गाँवों में भी जाता था, ऐसा उसने स्वयं बताया था। टोंका नामक पड़ोस के गाँव में उसके पिता को भूमिहीन अनुसूचित जाति-जनजातियों को शासन की ओर से दी गयी ज़मीन के तहत ढाई एकड़ ज़मीन मिली थी, ऐसा कुछ गांववालों ने भी बताया था। हो सकता है वह उस ज़मीन की देखभाल और खेती के लिए टोंका गाँव भी जाता हो। यह भी हो सकता है कि उसके नाम पर कोई अपराध कहीं दर्ज हों। वे आरोप या मामले भी सच्चे हैं या नहीं, ठीक से पड़ताल करने की ज़रुरत होगी क्योंकि गरीबों और दलितों को वैसे भी पुलिस किसी न किसी केस में बंद करके अपना अपराधी पकड़ने का कोटा पूरा करती रहती है। लेकिन अगर यह मान भी लिया जाये कि मनोज वाल्मीक किसी मामले में अपराधी होने का आरोपित है तो भी उससे उस व्यक्ति का अपराध कैसे कम हो जाता है जिसने मनोज वाल्मीक के बेटे और बहन को लाठी से पीटकर नृशंसता से मार दिया। इस बात का भी लोगों के पास कोई जवाब नहीं होता। कुछ लोग यह भी कह कर अपना पिंड छुड़ाते चल दिए कि अरे, आप नहीं जानते, ये लोग कितने सिर पर चढ़ गए हैं। हाँ, नए ज़माने में कुछ दलित हैं जो संगठनों की सक्रियताओं और तकनीक के फैलाव से अपने हक़ों और अपने संघर्ष के इतिहास को जान चुके हैं। जानने के बाद भी उनकी हिम्मत नहीं होती है कि वे शोषणकारी समाज व्यवस्था के खिलाफ कुछ बोलें या कुछ हलचल मचाएं क्योंकि किताब में एक कानून बन जाने से पूरी व्यवस्था नहीं बदल जाती। स्थानीय पंचायत से लेकर ज़िले और प्रदेश के राजनेता, पुलिस, प्रशासन, सभी कुछ जातिवाद और ऊंच – नीच के साथ आर्थिक अमीरी और गरीबी को भी शताब्दियों से अपने भीतर पाले-पोसे रहे होते हैं। और ऐसा व्यवहार ही इन अछूत कहे जाने वाले तबकों को घृणा और प्रतिहिंसा से भरता रहता है। जब उन्हें मौका मिलता है तो वे भी अपनी प्रतिहिंसा का मौका नहीं छोड़ते। इससे समरसता कभी आ ही नहीं सकती।

5. शौचालय – एक विवाद कथा

एक-दूसरे को एक-दूसरे का दुश्मन बनाकर चलने वाली राजनीति इतनी काबिल होती है कि वह किसी भी गौण मुद्दे को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मुद्दा बनाकर उसे जीने-मरने का सवाल और मनुष्य को पशुओं से भी गया-गुजरा संवेदनहीन बना देती है। पहले गाँवों से राशन की दुकानों से अनाज कम किया गया। कहा गया कि अब इतने ग़रीब हैं ही नहीं जो राशन की दुकानों से सब्सिडी वाला अनाज खरीदना चाहें। जब अपनी उपलब्धि दिखाने को गरीबों की तादाद कम करके दिखायी गयी तो ज़ाहिर है कि उनके हिस्से की सब्सिडी भी कम कर दी गयी। अब वे सरकार की ज़िम्मेदारी से बाहर हैं, चाहे जियें या मरें, क्योंकि उन्हें गरीबी वाला कार्ड नहीं दिया गया है इसलिए उन्हें गरीब नहीं माना जाएगा।

ठीक ऐसे ही, बिन काम पूरा किये सरकारी अफसरों को और ख़ुद सरकार को घोषणा की जल्दबाजी है। हमें गांववालों ने बताया कि अभी भी 15 से 20 घर ऐसे हैं जहाँ टॉयलेट नहीं हैं। और जहाँ हैं भी वहाँ आप सर्वे करके देख लें कि उनमें से अनेक उपयोग में नहीं आ रहे क्योंकि पानी का इंतज़ाम नहीं है। एक ग्रामीण ने सीधा गणित समझाते हुए यह भी बताया कि टॉयलेट बनाने के लिए सरकार देती है 12 हज़ार रुपये मात्र। स्वीकृति के बाद हर दफ्तर से फाइल और पैसा हाथ में आते – आते 5 से 6 हज़ार रुपये बचते हैं। उसमें क्या तो दीवारें उठेंगी, क्या शीट लगेगी, क्या दरवाज़ा लगेगा, क्या गड्ढा खुदेगा और क्या पानी का इंतज़ाम होगा।

ऐसे में जिन लोगों के घरों में टॉयलेट नहीं हैं और उन्हें खुले में शौच के लिए जाना होता है तो उन्हें सरकार की कमजर्फी का शिकार समझने के बजाय इतना बड़ा अपराधी ठहराया जा रहा है कि उनकी सजा के तौर पर उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया! अगर इसका कोई अपराधी है तो वो सरकार है, ऐसे राजनेता हैं जो कानून अपने हाथ में लेने वालों को सजा नहीं पुरस्कार देते हैं।

न्याय सुनिश्चित किया जाये

कहने को तो यह घटना इस विशाल देश को देखते हुए छोटी है लेकिन इससे दूरगामी गम्भीर संकेत मिलते हैं। ऐसी किसी भी घटना की पुनरावृत्ति रोकने के लिए ये ज़रूरी है कि कुछ सख़्त कदम उठाए जाएं। हमारी अनुशंसा है कि:

1. मनश्चिकिसकों और मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञों की एक स्वतंत्र पैनल द्वारा हाकिम सिंह यादव की मानसिक अवस्था की जाँच की जाये कि क्या वह वाकई बीमार है या सज़ा से बचने के लिए मानसिक असंतुलन की आड़ ले रहा है।

2. पीड़ित परिवार को नियमानुसार उचित मुआवजा दया जाएतथा परिवार के दो व्यक्तियों को शासकीय सेवा में लिया जाए।

3. मामले की जाँच में देरी न की जाए तथा अपराधियों को सख़्त सज़ा दी जाए। सख़्त सजा का अर्थ फाँसी से न लिया जाये। हम फाँसी की सजा को गलत मानते हैं और देश में फाँसी की सजा को समाप्त करने की अनुशंसा करते हैं।

4. गाँव को साफ़ रखने के लिए खुले में शौच से मुक्त करने का प्रयास अच्छी बात है किन्तु इससे ज़्यादा ज़रूरी और तुरंत किये जाने वाले प्रयास ऐसे होने चाहिए कि साथ-साथ एक ही गाँव में रह रहे लोग एक-दूसरे से नफरत न करें, अपने दिमागों को जाति-धर्म के श्रेष्ठता भाव की गंदगी से मुक्त करें। इसके लिए स्कूलों और अन्य सामाजिक संस्थाओं के साथ मिलकर ग्रामीणों को अस्पृश्यता के खिलाफ समझाइश देना तथा पानी भरने आदि किसी भी रोज़मर्रा के काम में जातिगत आधार पर भेदभाव को समाप्त किया जाना बेहद ज़रूरी है।

5. इस बात की विस्तृत जाँच की जाए कि कितने घरों में शौचालय नही हैं या होने के बावजूद इस्तेमाल योग्य नहीं हैं। जिन अधिकारियों और कर्मचारियों की ग़लत जानकारी के आधार पर इस गाँव को खुले में शौच से मुक्त गाँव घोषित किया गया था, उन पर सख़्त कार्रवाई की जाए।
6.जल्दबाज़ी में झूठी घोषणा करके गरीबों को और मुश्किल में डालने के जो ज़िम्मेदार हैं, उन्हें भी दण्डित किया जाये और उनकी ज़िम्मेदारी का एहसास करवाया जाये चाहे वे मुख्यमंत्री हों या प्रधानमंत्री।

खुले में शौच करते दो बच्चों की नृशंस हत्या की सीपीआई के जाँच दल की रिपोर्ट

इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली का हिंदी प्रोजेक्ट

संपादकीय एक : किसकी भाषा

हिंदी दिवस के अवसर पर केंद्रीय गृह मंत्री ने कहा कि हिंदी भारत में बोली जाने वाली भाषा हो सकती है और यह देश को एक साथ जोड़कर वैश्विक स्तर पर इसकी पहचान बन सकती है। यह विविधता में एकता की जगह एक ही ढंग से एकता की बात करने वाली सोच को दिखाता है। हालांकि, संबंधित मंत्री ने इसके लिए कुछ करने की बात नहीं कही लेकिन पहले ऐसी कुछ कोशिशें हुई हैं। उदाहरण के तौर पर नई शिक्षा नीति, 2019 के मसौदे में हिंदी को अनिवार्य विषय के रूप में शामिल करने और इसके बाद 'एक राष्ट्र, एक भाषा' की बात चलने से काफी लोगों के मन में भय पैदा हुआ।

इस तरह की बातों में इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया जाता है कि भारत की परिकल्पना विविध भाषा वाले देश के तौर पर की गई थी। इसलिए एक तमिल होने और एक भारतीय होने में कोई विरोधाभाष नहीं है बल्कि एक-दूसरे से ये संबद्ध हैं। एक राष्ट्र, एक भाषा की बात भाषाई विविधता और क्षेत्रीय विविधता को नजरअंदाज करती है। किसी एक भाषा को राष्ट्रीय भाषा के तौर पर थोपने की कोशिश से विवाद, संघर्ष और विभाजन पैदा होने का खतरा है।

भाषा एक लोकतांत्रिक व्यवस्था है। कोई भी भाषा इस्तेमाल करने वालों के कामकाज का इस पर असर होता है। अगर लोग विकास करते हैं तो भाषा भी आगे बढ़ती है। भारत के भाषाई सर्वेक्षण 2010 में 780 जीवित भाषाओं की पहचान की गई है। इसमें यह भी बताया गया कि पिछले पांच दशक में 220 भाषाएं गायब हो गईं। इसकी एक प्रमुख वजह के तौर पर अभूतपूर्ण पलायन और विस्थापन सामने आया।

इस स्थिति में सह-अस्तित्व से ही भाषाई समस्याओं का समाधान होगा। एक भाषा को थोपने से स्थितियां खराब ही होंगी। एक भाषा के साथ दूसरी भाषा के संबंधों को सहज बनाने की दिशा में काम करने की जरूरत है। क्या भाषाओं को विकास एक-दूसरे के बीच संबंध बढ़ाने से होगा या फिर एक भाषा को दूसरी भाषाओं का इस्तेमाल करने वालों पर थोपने से ऐसा होगा?

हिंदी को सभी को जोड़ने वाली समान भाषा के तौर पर देखा जाता है। दक्षिण भारतीय राज्यों ने जो आपत्तियां जाहिर की हैं उनके संदर्भ में यह अधिक उपयुक्त लगता है कि हिंदी के स्वाभाविक विकास की राह अपनाई जाए। संस्कृतनिष्ठ हिंदी का थोपा जाना क्या दोस्ताना नहीं लगता है? भारत की सरकारी हिंदी एक-दूसरे को जोड़ने के बजाए अलग करने का काम करती है। साहित्य और सिनेमा ने यह दिखाया है कि हिंदी की खूबसूरती इसकी सहजता में है। शुद्ध हिंदी इसके विकास को बाधित करती है। इसे थोपे जाने से इसकी करीब की भाषाओं जैसे भोजपुरी और कुमाउंनी के साथ-साथ उर्दू के विकास पर भी बुरा असर पड़ेगा।

हिंदी पट्टी के अधिकांश लोग हिंदी छोड़कर अंग्रेजी अपनाना चाहते हैं। कई लोगों के लिए हिंदी बोलने वाली की पहचान बोझ बन गई है। बहुत सारे युवाओं को लगता है कि अंग्रेजी उनके लिए अवसरों के द्वार खोल सकती है। ऐसे में यह सवाल उठता है कि जो लोग हिंदी बोलते हैं उनमें भी हिंदी का सम्मान क्यों नहीं है? क्यों वे हिंदी छोड़कर अंग्रेजी अपनाना चाहते हैं?

क्या इस दिशा में कोई कोशिश की जा रही है कि 'जीवन की भाषा' और 'ज्ञान की भाषा' के बीच की दूरी मिटे? क्या मातृ भाषा में ज्ञान के संसाधन उपलब्ध हैं? क्या विषयों के जानकार इन भाषाओं में लिखना चाह रहे हैं? क्या इन भाषाओं के साहित्य को समृद्ध करके सामाजिक-आर्थिक दूरियों को मिटाने की कोशिश हो रही है? क्या जो इन्हें इस्तेमाल करते हैं, उन्हें ये सशक्त बना रही हैं? जरूरत इस बात की है कि भाषा थोपी नहीं जाए बल्कि सामंजस्य के लिए कोई व्यवस्था बने। एक भाषा की जगह कई भाषाएं मिलकर भारत की पहचान बन सकती हैं।

संपादकीय दो : कारपोरेट कर में कमी

कारपोरेशन कर में कटौती के साथ ही सरकार ने स्वीकार कर लिया है कि मंदी चक्रिय नहीं है बल्कि वास्तविक है। विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों पर लगे सरचार्ज के हटने, सिंगल ब्रांड रिटेल में निवेश को सरल बनाने, कोयला खनन में 100 फीसदी विदेशी निवेश को मंजूरी देने, सरकारी बैंकों को नए सिरे से संगठित करने और कारपोरेशन टैक्स में 20 सितंबर, 2019 को हुई कटौती के बाद शेयर बाजार में सकारात्मक माहौल बना।

कर सुधार में सबसे अच्छी रणनीति यह मानी जाती है कि कर आधार बढ़ाएं जबकि कर की दर कम करें। कारपोरेट आयकर के मामले में यह और जरूरी हो जाता है। ऐसे में सरकार को पहले से दी गई रियायतों का अध्ययन करना चाहिए था तब कर की दर में कटौती करनी चाहिए थी। पांच साल पहले पिछले वित्त मंत्री का कारपोरेट कर को 25 फीसदी पर लाने का वादा इसी बात पर टिका था। लेकिन सरकार निवेश को लेकर माहौल ठीक करने की जल्दबाजी में कारपोरेट कर को घटा दिया। जो कंपनियां पहले से कर छूट नहीं ले रही हैं, उनके लिए अब यह दर 22 फीसदी होगी। लेकिन और अधिक दर पर कर दे रही छोटी इकाइयों की अर्हता को लेकर अभी कई बातें स्पष्ट होनी हैं। अगर कर का आधार बढ़ाना ही लक्ष्य था तो फिर इस पर विचार करने की जरूरत है कि आखिर मैट को 18 फीसदी से घटाकर 15 फीसदी पर क्यों लाया गया।

कोई भी टैक्स अर्थशास्त्री यह नहीं कहेगा कि कर नीतियों में कई लक्ष्य हों और इस वजह से कर रियायत का दायरा बढ़ता जाए। कर रियायत काफी अधिक पहले से है। इसके जरिए क्या हासिल किया जा सकता है, यह भी स्पष्ट नहीं है। बजट में ऐसे 28 विषयों का जिक्र है जिस पर कर रियायत दी जा रही है। इसमें विशेष आर्थिक क्षेत्रों से हो रहे निर्यात से लेकर बिजली के

वितरण, बुनियादी ढांचे का विकास, खनिज तेल के उत्खनन, चैरिटेबल ट्रस्ट और संस्थानों, खाद्य प्रसंस्करण, उत्तर पूर्वी और हिमालयी राज्यों की इकाइयां आदि शामिल हैं।

बाजार की प्रतिक्रिया इस उम्मीद पर आधारित थी कि कर में की गई कटौती का काफी लाभ होगा। कर की दर में कटौती से पहले यह दर 35 फीसदी थी जो प्रभावी तौर पर 2017-18 में 29.49 फीसदी थी। उस साल कारपोरेट कर के जरिए सरकार को 7.66 लाख करोड़ रुपये का राजस्व हासिल हुआ था। कर की दर कम करके 22 फीसदी करने से 1.12 लाख करोड़ रुपये के राजस्व का नुकसान होगा। नई कंपनियों के लिए यह दर 15 फीसदी है लेकिन उन्हें तब तक लाभ नहीं मिलेगा, जब तक वे मुनाफा नहीं कमाती हैं। 2019-20 में कर संग्रह को लेकर जो पूर्वानुमान हैं, उनमें बताया जा रहा है कि नुकसान अपेक्षाकृत कम होगा लेकिन इसके साथ यह भी सही है कि कर संग्रह भी कम होगा।

कर में कटौती का बोझ राज्यों को उठाना पड़ेगा। क्योंकि कटौती आधार दर में की गई है न कि उपकर और सरचार्ज में। केंद्र और राज्यों में करों के बंटवारे की जो व्यवस्था है, उसके हिसाब से राज्यों को 60,000 करोड़ रुपये का नुकसान होगा। जबकि केंद्र सरकार को जो 82,000 करोड़ का नुकसान होगा, उसमें से उसे 20,000 करोड़ रुपये सरकारी कंपनियों के लाभांश के रूप में मिल जाएगा। लेकिन राज्यों ने पहले की दर के हिसाब से खर्च की जो योजना बना रखी थी उनमें उन्हें आनन-फानन कमी करनी पड़ेगी। रियल एस्टेट जैसे क्षेत्रों में आई मंदी की वजह से स्टांप और निबंधन से होने वाली आमदनी भी कम होगी। जीएसटी के बाद राज्यों के पास आय का यही सबसे प्रमुख स्रोत बचा है।

सवाल यह भी है कि क्या इस कटौती से अर्थव्यवस्था की स्थिति ठीक होगी। बाजार की प्रतिक्रिया के बावजूद इसमें संदेह व्यक्त किया जा रहा है। पहली बात तो यह है कि नई कंपनियों के लिए कर की दर तब लागू होगी जब वे मुनाफा कमाना शुरू करेंगी। यह देखा जाना है कि क्या इससे निवेश बढ़ेगा। दूसरी बात यह कि भारत में समस्या मांग में कमी की है। इसमें यह देखा जाना है कि आपूर्ति के स्तर पर स्थितियों को सुधारने के लिए क्या किया जाता है। मौजूदा माहौल में मांग पैदा करने के लिए सरकार को काफी पैसे खर्च करने होंगे लेकिन वित्तीय घाटा की बाधा आड़े आएगी। वित्त मंत्री सरकारी कंपनियों को अपनी निवेश योजनाओं के क्रियान्वयन को कह रही हैं लेकिन सरकार ने इन कंपनियों से इतना अधिक लाभांश ले लिया है कि इनके पास निवेश के लिए पर्याप्त पैसा नहीं है। ऐसे में अगले कुछ महीने में नीतियों के स्तर पर माहौल कैसे बदलता है, यह देखा जाना है।

प्रसंगवश

UNHRC ने कश्मीर और असम पर जताई चिंता

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद (यूएनएचआरसी) ने कश्मीर में पिछले छह हफ्ते से जारी प्रतिबंध और असम में एनआरसी से बाहर हुए 19 लाख लोगों पर संकट को लेकर सोमवार को चिंता जताई. परिषद की अध्यक्ष मिशेल बैचलेट ने कहा, "कश्मीर में स्थानीय नागरिकों के लिए इंटरनेट पर रोक लगाना, नेताओं और कार्यकर्ताओं को हिरासत में लेना गंभीर मुद्दा है. मानवाधिकार परिषद के 42वें सत्र में मिशेल बैचलेट ने कहा, "मैं भारत सरकार और पाकिस्तान से अनुरोध करती हूं कि वे लोगों के मानवाधिकार का सम्मान करें और इसे सुनिश्चत करें. भारत से कर्फ्यू और बंद में ढील देने और लोगों को मूलभूत सामान उपलब्ध कराने की अपील करती हूं. हिरासत में रखे गए नेताओं के अधिकार भी सुनिश्चित करने चाहिए. कश्मीर में लोगों को अपने भविष्य को लेकर फैसले लेने के अधिकार मिले.

उन्होंने कहा कि यह महत्वपूर्ण है कि ऐसे किसी भी निर्णय की प्रक्रिया में कश्मीर के लोगों से मशविरा किया जाए और उन्हें शामिल किया जाए जिसका उनके भविष्य पर प्रभाव पड़ता है.

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार की प्रमुख मिशेल बैचलेट ने यह भी सुनिश्चित करने को कहा कि असम में राष्ट्रीय नागरिक पंजी (एनआरसी) सत्यापन लोगों को राष्ट्र विहीन नहीं करे. बैचलेट ने कहा कि असम में एनआरसी के कारण बाहरी लोगों में अपने भविष्य को लेकर चिंता है. उन्होंने सरकार से अपील की कि लोगों को अपनी नागरिकता साबित करने के लिए पर्याप्त समय प्रदान किया जाए, उन्हें हिरासत में न लिया जाए और न उन्हें राज्य से बाहर न किया जाए.

****

डीयू के शिक्षक के यहां पुणे पुलिस की छापेमारी के खिलाफ संगठनों का बयान

यलगार परिषद-भीमा कोरेगांव हिंसा मामले में पुणे पुलिस ने नोएडा में रह रहे दिल्ली विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर के घर मंगलवार को छापेमारी की. नोएडा में रहने वाले दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हनी बाबू एमटी के घर पुणे पुलिस ने करीब छह घंटे तक छापेमारी कर कुछ इलेक्ट्रॉनिक उपकरण व कागजात जब्त किए. पुणे क्राइम ब्रांच के डीसीपी बच्चन सिंह, एसीपी शिवाजी पवार के नेतृत्व में पुणे पुलिस की टीम सुबह साढ़े छह बजे नोएडा पहुंची और स्थानीय पुलिस के साथ सेक्टर-78 स्थित हाइड पार्क सोसायटी में रह रहे अंग्रेजी केप्रोफेसर हनी बाबू एमटी के फ्लैट की तलाशी ली. पीयूसीएल ने पुणे पुलिस की इस कार्रवाई की निंदा की है.

पीयूसीएल ने एक वक्तव्य जारी कर कहा है कि पुणे पुलिस ने गैरकानूनी ढंग से बिना सर्च वारंट के यह कार्रवाई की है.डॉ.हनी बाबू द्वारा छापे की वैधता के बारे में पूछे जाने पर, पुलिस ने कहा कि उन्हें अपने कार्यों की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है.

वहीं दिल्ली विश्वविद्यालय शिक्षक संघ डूटा ने एक बयान में कहा, ''बगैर तलाशी वारंट के इस तरह के छापे लोकतंत्र की मूल भावना, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के खिलाफ हैं." डूटा ने कहा, ''हम असहमति की आवाज के प्रति इस तरह से खुल्लमखुल्ला धमकाने वाले रवैये को फौरन खत्म करने की मांग करते हैं.'

प्रोफ़ेसर हनी बाबू ने आरोप लगाया कि बिना वारंट के आठ से दस पुलिसकर्मी उनके घर में आकर सर्च करने लगे जो उचित नहीं था. उन्हें आने से पहले सर्च वारंट लेकर आना चाहिए था. वे कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क और पेन ड्राइव भी ले गए जिसे बाद में वापस करने की बात कही.

उन्होंने कहा, ''अधिकारी मेरे घर में घुसे और मेरे अपार्टमेंट के हर कमरे की तलाशी ली. तलाशी छह घंटे तक चली, जिसके अंत में उन्होंने कहा कि वे लोग मेरा लैपटॉप, हार्ड डिस्क, मेरा पेन ड्राइव और पुस्तकें जब्त कर रहे हैं. उन्होंने मुझसे मेरे सोशल मीडिया अकाउंटों और ईमेल अकाउंटों का पासवर्ड बदलवाया." उनकी पत्नी जेनी रोवेना ने कहा कि छापे के बाद वे भयभीत हैं लेकिन डीयू के अध्यापकों और छात्रों ने उनके साथ एकजुटता जाहिर की है. उनकी पत्नी डीयू के मिरांडा हाऊस कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाती हैं. जेनी ने कहा, ''जब सुबह साढ़े छह (6:30) बजे वे (पुलिस) आए तब हम लोग गहरी नींद में सो रहे थे. उन्होंने हमसे कहा कि इस मामले में तलाशी वारंट की जरूरत नहीं है. उन्होंने हमें कुछ केस नंबर बताए और फिर कहा कि यह रोना विल्सन मामले से जुड़ा है."

प्रोफेसर हनी बाबू एमटी ने भी इस छापेमारी की कार्रवाई पर अपना वक्तव्य ट्वीट किया है : जेनी ने कहा, ''हमारे पास तीन कमरों में पुस्तकें रखी हुई हैं और उन्होंने पुस्तकों के वीडियो बनाये. छह घंटे बाद उन्होंने कहा कि आप अब कोरेगांव भीमा मामले में संदिग्ध हैं." उन्होंने ट्वीट किया, ''उन्होंने(पुणे पुलिस ने) कहा कि हनी बाबू कोरेगांव भीमा मामले में संलिप्त हैं और इस वजह से वे बगैर तलाशी वारंट के उनके घर की तलाशी ले सकते हैं. उन्होंने छह घंटे तक तलाशी ली, वे तीन पुस्तकें, लैपटॉप, फोन, हार्ड डिस्क ले गये."

****

बुलेट ट्रेन प्रोजेक्ट: भूमि अधिग्रहण के खिलाफ किसानों की याचिका गुजरात HC में खारिज

गुजरात हाई कोर्ट ने मुम्बई-अहमदाबाद बुलेट ट्रेन परियोजना के लिए जमीन अधिग्रहण के विरूद्ध किसानों की ओर से दायर की गयी 120 से अधिक याचिकाएं खारिज कर दी. यह

फैसला आज जस्टिस एएस दवे की अध्यक्षता वाली बेंच ने सुनाया. मामले में सुनवाई जनवरी में संपन्न हुई हो गई थी. न्यायमूर्ति ए एस दवे के नेतृत्व वाली खंडपीठ ने कहा कि राज्य सरकार द्वारा किसानों को दिया गया मुआवजा उचित है.हालांकि, पीठ ने कहा कि पीड़ित किसान उच्च मुआवजा लेने के लिए सरकार से संपर्क कर सकते हैं.

न्यायालय का यह भी मत था कि संशोधित अधिनियम के तहत सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन नहीं करने का प्रावधान अत्यधिक प्रतिनिधिमंडल की श्रेणी में नहीं आता है,जैसा कि आंदोलनकारी किसानों द्वारा किया गया है.

पीठ ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम की वैधता को कायम रखा जिसे गुजरात सरकार ने 2016 में संशोधित किया था और इसके बाद राष्ट्रपति ने मुहर लगाई थी.

मुख्य न्यायाधीश आर सुभाष रेड्डी और न्यायमूर्ति वीएम पंचोली की खंडपीठ ने पिछले साल भूमि अधिग्रहण को चुनौती देने वाली पांच किसानों द्वारा दायर याचिकाओं पर सुनवाई शुरू की थी. इस दौरान 1,000 से अधिक किसानों ने भूमि अधिग्रहण पर आपत्ति दर्ज कराई थी.किसानों ने हाईकोर्ट में अलग से हलफनामा देकर कहा था कि केंद्र की इस महत्वाकांक्षी 1.10 लाख करोड़ रुपये की परियोजना से काफी कृषक प्रभावित हुए हैं और वे इसका विरोध करते हैं.

याचिकाकर्ताओं ने दावा किया था कि वे केंद्रीय भूमि अधिग्रहण अधिनियम,2013 के तहत अधिक मुआवजे के हकदार थे. इसके अलावा उन्होंने भूमि अधिग्रहण कानून में गुजरात संशोधन की वैधता को भी चुनौती दी थी.

बुलेट ट्रेन के प्रस्तावित मार्ग से जुड़े गुजरात के विभिन्न जिलों के प्रभावित किसानों ने हलफनामे में कहा था कि वे नहीं चाहते कि परियोजना के लिये उनकी जमीन का अधिग्रहण किया जाए. उन्होंने यह भी कहा कि मौजूदा भू अधिग्रहण प्रक्रिया इस परियोजना के लिये भारत सरकार को सस्ती दर पर कर्ज मुहैया कराने वाली जापान इंटरनेशनल कोऑपरेशन एजेंसी (जेआईसीए) के दिशानिर्देशों के भी विपरीत है.

इस परियोजना की लागत करीब 1.10 लाख करोड़ रुपये है. इस परियोजना के लिए गुजरात और महाराष्ट्र में लगभग 1,400 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण किया जाएगा. अहमदाबाद से मुंबई के बीच बुलेट ट्रेन कॉरिडोर 508 किलोमीटर लंबा होगा जिसमें 12 स्टेशन होंगे.

****

पेट्रोल-डीजल के खुदरा व्यापार पर रिलायंस के कब्ज़े का रास्ता साफ़

केंद्र सरकार ने मुकेश अम्बानी की कंपनी रिलायंस को वो तोहफा दिया है जिसका इंतजार वह बरसों से कर रही थी. जिस तरह से टेलीकॉम इंडस्ट्री में जियो के आगमन से एक बड़ा बदलाव

आया है, उसी तरह से फ्यूल रिटेल को ओपेन फ़ॉर आल किये जाने से अब परिस्थितियां पूरी तरह से रिलायंस जैसी निजी कंपनियों के पक्ष में झुक जाएंगी.

मोदी सरकार के पहले कार्यकाल में रिलायंस को जिस तरह से टेलीकॉम इंडस्ट्री पर कब्जा करने की छूट दी गयी थी उसी प्रकार से मोदी-2 में उसे देश के पेट्रोल-डीजल के रिटेल व्यापार पर एकाधिकार करने के लिए खुला हाथ दे दिया गया है.

सरकार ने पेट्रोल डीजल के रिटेल कारोबार को गैर-पेट्रोलियम कंपनियों के लिए खोल दिया है. अब ऐसी कंपनियां भी पेट्रोल पंप खोल सकेंगी जो पेट्रोलियम क्षेत्र में नहीं हैं. ऐसी कंपनियां जिनका कारोबार 250 करोड़ रुपये है अब ईंधन के खुदरा कारोबार में उतर सकती हैं. अब फ्यूल रिटेल आउटलेट खोलने के लिए कोई भी कंपनी अप्लाई कर सकती है.

उक्त कंपनी को मात्र 3 करोड़ रुपये बैंक गारंटी के तौर पर देने होंगे. यानी अब पेट्रोल भराने के लिए आपको पेट्रोल पंप तक जाने की जरूरत नहीं है. पड़ोस में खुले रिलायंस फ्रेश या बिग बाजार सरीखे आउटलेट से आप पेट्रोल डीजल भरवा सकते हैं.

मोदी सरकार के इस कदम से असली फायदा रिलायंस रिटेल और वॉलमार्ट जैसी मल्टी ब्रांड रिटेल कंपनियों को होने वाला है और इसका सीधा नुकसान सरकारी कम्पनियों को भुगतना होगा.

भारत में फ्यूल का मार्केट तेजी से बढ़ रहा है फ्यूल रिटेलिंग में फिलहाल सरकारी कंपनियों का ही बोलबाला है. अभी देश भर में सरकारी ऑयल मार्केटिंग कंपनियां जैसे इंडियन ऑयल कॉर्प (IOC), भारत पेट्रोलियम कॉर्प लिमिटेड (BPCL) और हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्प लिमिटेड (HPCL) लगभग 65,000 पेट्रोल पंपों को संचालित करती हैं.

इसकी तुलना में निजी क्षेत्र की तेल कंपनियों के पेट्रोल पंप बहुत कम है. रिलायंस जो देश की सबसे बड़ी ऑयल रिफाइनिंग कॉम्पलेक्स को संचालित करती है, उसके 1,400 से भी कम आउटलेट हैं. यानी फ्यूल रिटेल का लगभग 95 प्रतिशत व्यापार जो सरकारी कंपनियों के पास है अब वह रिलायंस ओर विदेशी कंपनियों के हाथ मे आ जाएगा.

क्या आप अंदाजा लगा सकते हैं कि देश भर में प्रतिदिन कितना पेट्रोल डीजल बिकता है? एक मोटे अनुमान के अनुसार देश भर में प्रतिदिन 12 अरब लीटर पेट्रोल ओर करीब डीजल 27 अरब लीटर बेचा जाता है. पेट्रोल दिल्ली में 73 रुपये लीटर के आसपास है यानी 12 अरब को 73 से और डीजल 27 अरब लीटर के कंजम्पशन को 66 से गुणा कर दीजिए यह रकम खरबो में पहुंच जाती हैं.

यदि आने वाले पांच साल में इस व्यापार का 50 प्रतिशत भी रिलायंस ओर विदेशी कंपनियों के हाथ में चला जाता है तो देश की इकनॉमी को कितना बड़ा खतरा उत्पन्न हो जाएगा! एक बार सोच कर देख लीजिएगा!

क्या कोई बता सकता है कि पेट्रोल, डीजल को अब तक जिस तरह से पेट्रोल पंप के माध्यम से बेचा जा रहा था उस प्रणाली में क्या खराबियां थीं?